

चौथा अध्याय

चन्द्रकान्त देवताले की कविताओं में बदलती
सांस्कृतिक अस्मिता का सामाजिक परिप्रेक्ष्य
और प्रतिरोध

चौथा अध्याय चन्द्रकान्त देवताले की कविताओं में बदलती सांस्कृतिक अस्मिता का सामाजिक परिप्रेक्ष्य और प्रतिरोध

भारतीय संस्कृति ने विश्वमानवता को एकत्व का मिसाल दिया है। भारत राष्ट्र की ताकत उसकी मूल्यवान संस्कृति है जिसमें विश्वासों, परंपराओं और नैतिक मूल्यों का समावेश है। मानवता पर केन्द्रित यह मूल्यवान संस्कृति ही भारत की सांस्कृतिक अस्मिता की पहचान है, जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी एक मूल्यवान धरोहार के रूप में हस्तान्तरित किये जाते रहते हैं।

भारतीय संस्कृति में भोग और त्याग के बीच हमेशा एक संतुलन बरकरार था। लेकिन आज के बदलते मूल्य-बोध और जीवन-दृष्टि ने इस संतुलन को बिगाड़कर रख दिया। पश्चिमी दुनिया के साथ हुए संपर्क ने भारतीय सांस्कृतिक अस्मिता में परंपरागत मानवीय मूल्यों के स्थान पर विलासपूर्ण पाश्चात्य मूल्यों का अवरोधित कर दिया था। तब अवमूल्यन की स्थिति उपजने लगी। परिणामस्वरूप मानवीय मूल्यों पर केन्द्रित भारत की सांस्कृतिक अस्मिता अपनी पहचान खोकर आकृतिविहीन बन गई। नई सांस्कृतिक अस्मिता के बारे में ए. अरविन्दाक्षन ने यूँ कहा है - “नयी सांस्कृतिक अस्मिता शोषण तन्त्र पर आधारित, हमारे सामाजिक और राजनीतिक ढाँचे को तिरस्कृत करने की प्रेरणा और क्षमता प्रदान करती है।”¹ बदलती सांस्कृतिक अस्मिता की बदहालत और आतंक को चन्द्रकान्त देवताले पहचानते हैं। इसीलिए कवि कहते हैं-

“कोई फायदा नहीं पूछने से
 कि अब किस मशीन पर सिलेगी
 यह बुरी तरह फटी कमीज़ इतिहास की
 रफू करेगा कौन इसे
 आकाश जितना संस्कृति का छेद”²

संस्कृति में उपजे इस छेद को पहचाननेवाले कवि की आँखें उन्हें ढूँढ़ रहा है, जो संस्कृति को तहस-नहस होने से बचाये। जो संस्कृति को बचाने की कोशिश में इधर-उधर भटककर सांस्कृतिक कार्यक्रमों का उद्घाटन करके परिक्रमण कर रहे हैं, वह खुद भी मैले हैं। उन पर मोहताज होना हमारी मूर्खता का ही प्रमाण है। क्योंकि “वे सांस्कृतिक कार्यक्रमों का उद्घाटन कर उस चिन्ता से मुक्त हो जाते हैं और सांस्कृतिक संकट लगातार बढ़ता जाता है।”³ ये लोग चुनाव जीतने और अधिकार प्राप्त करने के लिए आकुल रहते हैं। इस बदहालात का सही संस्पर्श इन पंक्तियों में मिलता है-

“विडम्बना तो यह है कि अब
 दुर्योधन ही करता है चीत्कार बचाओ-बचाओ
 कि संस्कृति का चीर-हरण हो रहा बचाओ
 हकीकत तो यह है
 कि नंगी है संस्कृति नंगा है दुर्योधन
 और भक्तिभाव की मुद्रा में
 हाँ में हाँ मिलाते नंगे है कामातुर सभासद।”⁴

संस्कृति के चीर हरण करनेवाले ही वास्तव में उसकी बदहालत के प्रति चिंतित होने का दावा कर रहे हैं। असल में संस्कृति को बचाने की दिखावटी कोशिश करनेवालों और उसके साथ गलत इरादे से जुड़े रहनेवालों के हाथों से ही संस्कृति

के अवमूल्यन हो रही हैं। इनमें भ्रष्ट राजनीतिज्ञ, कट्टर संप्रदायवादी, शोषक वर्ग, आधुनिक भौतिकवादी, और साम्राज्य शक्तियाँ सभी शामिल हैं।

विकासशील भारत अब विकसित होने की कोशिश में है। इसलिए ही आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक तौर पर विकास के नये-नये मुहावरे अपना रहे हैं। लेकिन आज की विडम्बना यह है कि जिस विकास के ज़रिए भारत ऊर्ध्वगामी बनना चाहती हैं, वह संस्कृति-विरोधी बनती जा रही हैं। उस विकास में मात्र आर्थिक और भौतिक विकास की संकल्पना है, जो सांस्कृतिक संकट का परिचायक है। बदलते सांस्कृतिक परिदृश्य में उपभोग, बज़ारूपन और बिकाऊ मानसिकता की बोलबाला है। इसी वजह से समाज के हरेक क्षेत्र अवमूल्यन का सामना कर रहे हैं।

4.1 भूमंडलीय समाज के उपभोगवादी संस्कृति

उपभोगवादी संस्कृति में भोग की प्रधानता है। उपभोग की इच्छा के पीछे सुखवादी चिन्तन है। आदमी द्वारा वस्तुओं का निश्चित रूप में उपभोग कतई बुरी बात नहीं है। लेकिन आज वे अपनी निश्चित ज़रूरतों से बाहर निकलकर पड़ोसी के सामने अपनी हैसियत दिखाने या अधिकाधिक भोग-विलास को लक्ष्य करके 'उपभोग' को प्रश्रय दे रहे हैं। ऐसी उपभोगी मानसिकता उपभोगवादी संस्कृति के पनपने का कारण बन रहा है। शंभूनाथ इसे यूँ बताया है "एक ऐसी संस्कृति पनपने लगी है, जिसका मुख्य आधार उपभोग के चरम मूल्यों पर आधारित सुखवाद है। रोमांटिक युग के स्वायत्त और कल्पनाशील सुखवाद से भिन्न यह नया सुखवाद उपभोग केन्द्रित और अंधा है। इसने उपभोग के क्षेत्र में एक बर्बर होड पैदा कर दी है।"⁵

वर्तमान दुनिया के आत्मकेन्द्रित मानव के लिए पैसा कमाना ज़्यादेतर उपभोग की वस्तु जुटाना आदि जीवन लक्ष्य बन गये हैं। हर कहीं धन कमाने की

भागदौड़ है। रिश्ता, नाता, संबन्ध सब धनाधारित हो रहे हैं। भूमंडलीकरण की प्रक्रिया ने भोगवादी पाश्चात्य संस्कृति को भारतीय मिट्टी में जमाने का अवसर प्रदान किया है। घरेलू संबन्धों से भी सादगी नष्ट हो रहे हैं और उपभोगी नज़रिया सशक्त हो रही है। घर में पति मात्र उपभोग के साधन जुटानेवाला यन्त्र है, पत्नी के लिए भी, बच्चों के लिए भी। पारिवारिक संबन्धों में से आपसी लगाव और संवेदनशीलता खतम रही है। परिवार के लिए कर्मरत कुलपिता की विवशता को देवताले ने यूँ व्यक्त किया है-

“प्रेम के पहले मुझे बीवी से डर लगता है
वह पडोसी के यहाँ किसी नयी चीज़ से शुरू होती है
मुझे लगता है मैं प्रेम नहीं कर रहा
फरमाईशों के ताशमहल में भटक रहा हूँ
मुझे अपने बेटे के खत से डर लगता है
जो हज़ार से कम कभी चाहता ही नहीं
मुझे लगता है, मैं पति नहीं पिता नहीं
एक जानवर हूँ नोट हडपनेवाला
एक मशीन हूँ सुविधायें जुटानेवाली
मुझे अपने उस घर से डर लगता है।”⁶

उपभोगी संस्कृति ने जिस चमक-दमक ओर ऐश और आराम की दुनिया को जन्म दिया है वह महज एक थोथी कल्पना है। फरेब, झूठ-धोखा भ्रष्टाचार, कमीनगी आदि उस दुनिया की नीतियाँ हैं। “उपभोक्तावाद की दो मुख्य देन हैं भुक्खडता और बर्बरता।”⁷ वह भूख किसी के लिए अधिकार का होगा, किसी के लिए लिप्सा का और किसी के लिए प्रतिष्ठा का। उसकी भोगी मानसिकता भूख के इन विविध पहलुओं से जूझते रहते हैं। इसी वजह से वे झूठ और फरेब की दुनिया

में फंस जाते हैं। व्यक्ति चैन से जी भी नहीं सकता और बेफिक्र होकर कीचड में रम भी नहीं सकता। उपभोगी दुनिया में भारतीय युवकों की यही विडम्बना है।

“हर जगह स्याह दस्तकें फरेब की भूलभुलैया
 धोखे से कमाई हर चीज़ की काँटेदार झाड़ियों में फंसा मैं
 अपने ही खुश लोगों के बीच
 अजनबी छाया सा मंडरा रहता हूँ
 मैं क्या करू सर ! मुझे इस डर से बचाईए।”⁸

उपभोक्ता समाज को मज़बूत बनाने में बाज़ार और मीडिया दोनों की भूमिका है। मीडिया द्वारा स्त्री को ऐसे प्रेषित किया जा रहा है कि वह एक ‘माल’ बनकर उभर आ रही है। सैबर दुनिया में नारी के वस्तुकरण उसके प्रति तुच्छ मानसिकता पनपने का कारण बन रहा है। फिल्मों में, विज्ञापनों में, रियाल्टी शो में खुले दह प्रदर्शन और यौन लैंगिकता आदि के कारण स्त्री देह के प्रति कामुकता और उत्सुकता पैदा करती है। युवा-पीढ़ियाँ आज सबसे ज़्यादा इन्हीं इलक्ट्रॉनिक मीडिया में संलग्न रहती हैं। इसी वजह से स्त्री के प्रति भोग की दृष्टि विकसित हो रही है। एक पिता के लिए आज लड़की का बाप बनना डरावना लगता है। क्योंकि ऐसे भोगी संसार के शिकार बनने के लिए लड़कियों को पालना दुख की बात है। बेटियों से अथाह प्रेम होने के बावजूद भी वर्तमान भारतीय देश के हर पिताओं के लिए लड़कियों का पिता बनना खौफनाक है।

“सिर्फ बेटियों के पिता होने से
 कितनी हया भर जाती है शब्दों में
 मेरे देश में होता तो है ऐसा
 कि फिर धरती को बाँचती हैं
 पिता की कवि आँखें....”

स्त्री के प्रति उभर रही यह भोगी मानसिकता भारतीय सामाजिक अस्तित्व को भी खतरे में डालती है। स्त्री को देवी बनाकर पूजा करनेवाला आर्ष भारत में बलात्कार की घटनायें आम होती जा रही हैं। यह विसंगति उपभोगी संस्कृति से उपजी है। भारतीय सामाजिक व्यवस्था को तहस-नहस कर रहे ऐसे नृशंसा अत्याचारों में घायल हुए औरतों की ज़िन्दगी मृतजीवन के समान है। संवेदनशील कवि होने के नाते उससे भी ज़्यादा आम मानव होने के नाते ऐसी स्त्रियों को होसला देना वे अपना कर्तव्य समझता है। इसलिए कवि कहते हैं-

“भूल जा जोर जबरदस्ती की रात
अंधेरे के हमले को भूल जा बाई”¹⁰

स्त्री को उपभोग की वस्तु माननेवालों की दुनिया से ग्रामीण जनता भी परेशान है। इसलिए समाज के अविकसित प्रान्तों की जनता को प्रौद्योगिकीकरण और तकनीकी विकास हजम नहीं होते। वे तकनीकी विकास को अभिशाप मानते हैं। क्योंकि सादगी से भरी ग्रामीण जीवन को विकास के ज़रिए बाहरी दुनिया के छल-कपट विषैला बना देंगे। इसलिए विकास के खिलाफ यानी गाँव में बनानेवाले नये पुल के खिलाफ वे अपने कुल देवता से प्रार्थना करते हैं। उनकी प्रार्थना निरी विनती नहीं बल्कि अपने ढंग का प्रतिरोधी तेवर लेकर इन पंक्तियों में उपस्थित है-

“पुल को मत टिकने बनने देना
इज्जत पर हमला है
बेटियों की रक्षा करना महाराज”¹¹

भारतीय संस्कृति की विसंगति यह है कि वह स्त्री के प्रति उभरनेवाले इन उपभोगी मानसिकता को, भोग-विलास के कठोर हाथों को रोक नहीं सकती। वर्तमान युग ने स्त्री से स्त्री बनकर जीने का हक छीन लिया है। ज़िन्दगी के हर मोड

पर उभर रही इन चुनौतियों का सामना किए बिना वह आगे नहीं बढ़ सकती। वह कभी उपभोगी संस्कृति का शिकार बनती है, तो कभी घरेलु संघर्ष की। स्त्री समत्व, स्त्री स्वत्व आदि शब्द वर्तमान युग में खोखले बनते जा रहे हैं।

आदमी से उसका आदमीयत का छिन जाना सबसे बड़ा सांस्कृतिक संकट है। क्योंकि भारतीय संस्कृति में मानवीयता और आदमीपन को सबसे ज़्यादा एहमियत प्राप्त है। भूमंडलीय दुनिया के उपभोक्ता समाज में जीनेवाला आदमी अपनी पूरी ज़िन्दगी में कुछ पालतू चीज़ों को इकट्ठा करने की भागदौड़ कर रहा है। पड़ोसी के सामने खुद को दूसरों से ऊपर स्थापित करने की इस होड़ में मानव से मानवीयता छीज रही हैं। दिखावटी दुनिया में तहस-नहस हो रही मानवीयता और आदमीयता मानव के ही स्वत्व रूप है। जिसके खो जाने से वह खुद खोखला गया है। असली आदमी या सही मनुष्य का होना आज के संदर्भ में महत्वपूर्ण है। परन्तु उसकी जगह हाशिए पर है, कपड़ों और जूतों के बीच मानव हो जाने को वह विवश है।

“कपड़ों और जूतों की दौड़ के बीच
असली आदमी गायब हो गया है।”¹²

भौतिक विकास के चंगुल में फंसे आज के स्वार्थी मानव केवल भौतिक साधनों को जुटाने में ही जीवन का एकमात्र लक्ष्य समझता है। नतीजतन बेमतलब हो रही है और समाज में अन्याय भ्रष्टाचार और अराजकता फैल रही है।

उपभोगी मानसिकता का उत्तरोत्तर बढ़ते जाना मानवजीवन को ही नहीं संपूर्ण दुनिया को प्रभावित कर रहे हैं। उसके इर्द-गिर्द व्याप्त प्रकृति को भी मानव के भोगी प्रवृत्ति ने खतरे में डाल दिया। इसी वजह से आज अनेक प्राकृतिक विपत्तियाँ जन्म ले रही हैं। प्रकृति और मानव के बीच एक तालमेल था। आज मानव के भोगी जीवन के परिणामस्वरूप यह संतुलन बिगड़ गया। जंगलों से पेड़ों की अवैद्य कटाई,

नदियों से गैर कानूनी रूप से मिट्टी लेना आदि की वजह से बाँध भूकम्प और सुनामी जैसी विपदायें आती रहती है। साथ ही मनुष्य सहज नैसर्गिक मूल्यों का हनन भी होता है। पेड़ जो बच्चों को फल, स्त्रियों को फूल, चाहने पर छाँव देते हैं और चिड़ियाओं को प्रश्रय देने हुए उन्हीं के नैसर्गिक सौन्दर्य से हमें महकाते हैं, उन्हीं पेड़ों को भी मानव के उपभोगी सोच से मुक्ति प्राप्त नहीं है।

“पर आदमी पेड़ों की पसलियों
तक से वसूल करता है
और काठ की दो-तीन चिड़ियाँ
सफेद दीवार पर टाँक देता है।”¹³

वर्तमान सुखभोगी मानव के लिए प्रकृति भी उपभोगी वस्तु है। प्रकृति की हर चीज़ पर वे अपना हक समझते हैं। इसलिए जो टहनियाँ चिड़ियाओं के लिए कन्धा था आज वह कन्धा ही बेजान चिड़िया बन गया है। बच्चों को बहलानेवाले इन चिड़ियाओं की संगीत के अस्तित्व को ही उपभोगी दुनिया ने चुनौती दी है। तद्स्वरूप प्राकृतिक असंतुलन और मानव-जीवन में विभिन्न प्रकार की मुसीबतों का झमेला भी छाया रहता है।

वर्तमान राजनीति को भी उपभोगी नज़रिया ने हडप लिया है। उपभोगी संस्कृति के शिकंजे में फंसे व्यक्ति जब राजनेता बनकर जनसेवा करने निकलते हैं तो राष्ट्र का अस्तित्व खतरे में पडती है साथ ही राजनीतिक असमता भी उपजती है। नेता-वर्ग जनता की सेवा के लिए नियुक्त है पर वे खुद अपनी जेब की सेव में निवृत्त है तो भ्रष्टाचार में लथपथ राष्ट्र कभी मुक्ति नहीं प्राप्त करेगा। अपने ऐश और आराम की ज़िन्दगी के लिए उनके ये पैसा कमाऊ मनोवृत्ति हमेशा जागरूक रहती है। अपने गलत कमाई के द्वारा अधिकाधिक भोग के सामान जुटाने का प्रयत्न करता

है यही उनका जीवन लक्ष्य बन जाता है। ऐसे नेताओं से भरे वर्तमान भारत की राष्ट्रीय संस्कृति आज गहरे संकट में है। इसके प्रति कवि चिंतित है।

“पक्का जानो स्विट्ज़रलैण्ड की बैकों में रखेंगे वे
अंधेरे की कमाई के अण्डे
इन्हें क्यों दिखायी दे अब
बीच बस्ती में रोती-झींकते घर”¹⁴

ऐसे नेताओं के दिमाग अपनी पूँजी के लिए हमेशा आकुल रहते हैं। उन्हें राष्ट्र के भविष्य की चिंता कतई नहीं होगी। क्योंकि धन-संचय की होड में कभी-भी, गाँवों के गरीबों को, उनकी मजबूरियों को, बस्ती के लोगों की मुसीबतों को प्रदूषित अस्पतालों को, उनकी समस्याओं को और अपर्याप्त सैकड़ों सरकारी स्कूलों को देखेंगे ही नहीं। भारत का वास्तविक यथार्थ इन्हीं में बसी है। इन्हीं समस्याओं को बिना जाने पहचाने कोई भी नेता राष्ट्र को प्रगति नहीं प्रदान कर सकता।

वर्तमान दुनिया के आत्मकेन्द्रित मानव अपने जीवन के हर पड़ाव में जीतना ही चाहता है। उसके लिए रास्ता ढूँढते फिरते हैं। धन कमाना, चहीती मंजिल तक पहुँचना, सफलता प्राप्त करना आदि को जीवन लक्ष्य समझनेवाले आधुनिक मानव किताबों में भी अपनी विजय का शॉर्टकट ढूँढते हैं। किताबों को सच्चे और सबसे अच्छे दोस्त मानते हैं। लेकिन सही मार्गदर्शक और जीवनसाथी की भूमिका अदा करनेवाली किताब स्वार्थी मानवों की दुनिया में बेमतलब हो गई है। जीत को कैप्सूल बनाकर पेश करनेवाली किताब सबसे लोकप्रिय हो रही है। साहित्य जगत में भी उपभोगी मानसिकता वर्तमान है-

“अपने फायदे या जीवन की चिन्ता की
जिस सीढ़ी पर होंगे जो

खरीदेंगे ढूँढेंगे वैसी ही रसद अपने लिए
 सफलता और धन कमाने
 और दुनिया को जीतने के रहस्यों के बाद
 अंग्रेज़ी सीखने और इसका ज्ञान बढ़ानेवाली
 किताबों पर टूटेगी भीड़”¹⁵

साहित्य जगत में भी भोगवादी सोच ने कदम रख लिया है। बदलते परिवेश ने साहित्य को और साहित्यकार को भी चोट पहुँचाई है। समाज के शोषितों, दलितों के साथ खड़े रहना, सभी प्रकार के अत्याचार और अन्याय के खिलाफ आवाज़ उठाना, समता-निषेध की खुलासा करना आदि साहित्य जगत की नीतियाँ थी। लेकिन जैसे अन्य सभी क्षेत्रों में उपभोग को, स्वार्थी मानसिकता को, लालच को, धनोपार्जन को ज़्यादा अहमियत मिला है, वैसे ही साहित्य जगत में भी केवल मुनाफे को ही प्रधानता मिल रही है। इसलिए कविता और कवि दोनों का अस्तित्व नष्ट हो गया है।

“पूछते ही रहे कवि हमेशा अपने ही
 बारे में
 नाम, रास्ता, जगहें
 सब कुछ निष्कासित ही रहा
 जिनका
 समय के जगमगाते कातिल इलाके से”¹⁶

4.2 क्रय-विक्रय की बाज़ारू संस्कृति

भूमंडलीय उपभोक्ता समाज में हरेक क्षेत्र बाज़ार-केन्द्रित हो गया है। यहाँ तक ही मानवीय संबन्ध रिश्ते-नाते, सामाजिक सरोकार और व्यक्तित्व निर्माण में भी यही क्रय-विक्रय को, बाज़ारू मनोभाव हावी हो रहा है। वर्तमान समय में बाज़ार ही

केन्द्र बन गया है। समकालीन जीवन में भी यही बाज़ार की लेन-देन की नीति अपनाने लगी तब भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों का बाज़ारीकरण हो गया।

आज के उपभोक्ता समाज में व्यक्ति मात्र खरीददार बनता जा रहा है। वह आदमी के समान नहीं बल्कि एक खरीददार के समान हरेक वस्तुओं को मुनाफे की दृष्टि से देखता है। बाज़ार संस्कृति व्यक्ति को महज उपभोक्ता बनाकर पेश कर रहा है। पृथ्वी के सभी जीव-जन्तुओं की परछाई भी इसी बाज़ार दृष्टिकोण से मुक्त नहीं है। चन्द्रकान्त देवताले इस सच्चाई की ओर इशारा की है-

“यह वक्त बाज़ार है लेब्रेडोर
तुम्हारी परछाई तक पर
नज़र है खरीददार की”¹⁷

बाज़ार संस्कृति की घुसपैठ आम मानव के जिन्दगी के हर जगह है। कदम-कदम पर, जिन्दगी के हर पड़ाव में बाज़ार उपस्थित है, अपने मौकापरस्त इरादों के साथ :-

“बीहड है बाज़ार की घुसपैठ
श्मशान में भी लोग चुप और संयमित नहीं रह पाते”¹⁸

बाज़ार की पहुँच और उसकी ताकत से आधुनिक मानव हताश है। बाज़ार ने हरेक व्यक्ति में चाहे वह उच्चवर्ग के हो या मध्य वर्ग के या फिर निम्नवर्ग के सभी व्यक्तियों में उपभोग की तृष्णा को पैदा करने और उसकी उत्तरोत्तर वृद्धि करने का भरसक प्रयास करती है। इसलिए इसके मायाजल से व्यक्ति कभी भी स्वतंत्र नहीं होते। श्मशान जैसे जगह भी इससे मुक्त नहीं है।

चीज़ों को सुन्दर, आकर्षक और मोहक बनाकर बाज़ार पेश करता है। ताकि जनता उन्हें खरीदने के लिए मजबूर हो जाये। ज़्यादा से ज़्यादा ग्राहक लाने के लिए प्रयत्नरत बाजार नीति में फंसने के लिए अभिशप्त है आम आदमी। बच्चों पर इसका असर सबसे ज़्यादा होता है। मीडिया और विज्ञापनों के व्यापक प्रसार बच्चों को भी उपभोक्ता बनने के लिए मजबूर बनाता है। इस उपभोगी संस्कृति के शिकंजे में फँसे बचपन के दूरगामी परिणाम चिंताजनक है। चीज़ों को हासिल करने की होड उनके मानसिक विकास को भी स्थगित करा देती हैं। जीवन के प्रति उमड रहे इस एकांगी दृष्टिकोण में उनका भविष्य धीमी हो जाती हैं। बच्चों के भविष्य के लिए जो खतरा है, वह देश के भविष्य के लिए भी है। बाज़ार जिस तरह बच्चों को भी अपने हाथों की कठपुतली बना रहे है इसकी ओर कवि इशारा कर रहा है-

“दूकानों चीज़ों से अँटी पडी है
हम उन चीज़ों के बारे में नहीं जानती
और खरीद भी नहीं सकते
तब भी बच्चे जिद्द करते और चीखते-चिल्लाते है
और चिडचिडापन औरतों पर हमला करता रहता है”¹⁹

आज बाज़ार तय कर रहा है कि हम क्या खरीदे। वर्तमान उपभोक्ता समाज में व्यक्ति की विडम्बना यह है कि वह किसी और चीज़ खरीदने के लिए बाज़ार जाता है, और बाजार उन्हें यह यकीन दिलाता है कि वह चीज़ जो हमने मांगा था, वह नहीं बल्कि कोई ओर चीज़ है जो हमारे लिए ज़्यादा उपयुक्त है। क्योंकि जिस वस्तु की मांग हमने की थी, वह बाज़ार नीति के खिलाफ है। इस तरह बाज़ार तय करता है कि हमारे लिए क्या ज़रूरी है, क्या नहीं। इस विडम्बना को कवि यँ प्रस्तुत करता है-

मैं दवाई खरीदने गया और मुझे मिट्टी दी गयी
 मैं राशन की कतार में खड़ा रहा
 मुझे मटमैली लोंदा मुट्ठी-भर शकर मिली।”²⁰

बाजारू संस्कृति में मानव अपने दिमाग ज़्यादा मुनाफे पर केन्द्रित रखता है। अभी रिश्ते नातों को धनाधारित बनाकर उसका मूल्यांकन करता है जैसे स्नेह, करुणा भाईचारा, ममता, जैसी भावनाएँ मृत भी गया हो। इसलिए ही धनिक लोग अपनी सहायता करनेवालों को भी पैसे देकर कर्ज चुकाना चाहता है। अपने बडप्पन दिखाने के वास्ते कर रहे यह काम वास्तव में उनकी मेहनत की निन्दा है। एक अमीर के बेटे का सफेद जूता जब पानी में वह गया तो एक लुहार का काला बच्चा बहते पानी में डूबकर उसे वापस लाता है। आर्थिक विपन्नता से पीडित उस गरीब के लिए वह जूता बड़ा ही मूल्यवान था। इसलिए वह अपने जान दाँव पर लगाने के लिए तैयार हो गया। लेकिन बच्चे की उसी भाईचारे की भावना को अपनेपन को वह धनिक व्यक्ति पैसों से तोलना चाहता है।

“बाप बच्ची का उसे देने को हुआ
 पैसे दस का सिक्का
 आँखें फाड देखा उसने क्षण एक
 फिर गरदन और आँखों से किया
 मना - उस लडके को देखा
 गोरी चिट्ठी मक्खन की तरह
 और फिर अपने को पा ऐसा
 वह तेजी से दौड़े गया नंग-धडंग
 कीचड में फटफटाता हुआ ओझल”²¹

धन को अहमियत देनेवालों के नज़रिए ने लुहार के बच्चे की सहजता को पैसे के बल पर तोला। संवेदनशून्य व्यक्ति ही ऐसे बाज़ारू सोच का शिकार बन जाते हैं।

साहित्य के क्षेत्र में बिकाऊ बने साहित्यकार को प्रायः समाज में सम्मान प्राप्त होता है। जैसे अन्य सामाजिक संस्थाओं में (शिक्षा, कानून और राजनीति) होते हैं वैसे ही साहित्य को भी धनोपार्जन के माध्यम माननेवालों का बोलबाला है। समाज में ख्याति प्राप्त करने के वास्ते लोग आज साहित्यकार बनना चाहते हैं। ऐश और आराम की ज़िन्दगी, समाज में नाम और शोहरत के अलावा इन्हें कुछ और नहीं चाहिए। इसलिए वे किसी भी तरीके से साहित्य जगत में अपना स्थान चाहते हैं-

“साहित्य के गढ़ में प्रवेश करने की
कौनसी है कुंजियाँ
और शब्दों की दुनिया में हम कैसे क्या करें”²²

साहित्य जगत में प्रवेशित होने के लिए कुंजियाँ ढूँढते हुए आये इन लोगों को कवि ‘साहित्य पर बाज़ार का प्राकृतिक प्रकोप मानते हैं। कवि के लिए बिकाऊ बनकर जीना नामुमकिन है। लेकिन वह जानता है कि समाज के सम्मानित सदस्य बनने के लिए बिकाऊ बनना पड़ेगा। धन संचय को ज़्यादा महत्व देना पड़ेगा। क्योंकि वर्तमान समाज के साहित्य जगत में चिकनी भाषा के प्रयोग करके सबको खुश रखते हुए जीनेवालों का बाहुल्य है।

“अगर मैं भी बन जाऊँ बिकाऊ एक अदद जिनस
धन बटोरने के कीचड़ में सत्य के व्यभिचार की हिस्सा
तो आप लोग समझेगे अब हुआ यह किसी लायक मृदुभाषी
यानी बन गया सुअरबाडे का सम्मानित सदस्य”²³

साहित्य जगत के बाज़ारू पहलुओं ने उसकी ताकत को कमज़ोर बना दिया है। “परिवर्तनकारी क्रांतिकारी साहित्य की जगह साहित्यकार के आत्मानुभव व्यक्त करनेवाले साहित्य ने ली है। साहित्य में समष्टि बोध को समाप्त कर व्यक्ति चेतना को महत्व दिया जा रहा है। संपूर्ण साहित्य बाज़ारवादी अपसंस्कृति की उत्तर आधुनिकतावादी सोच से प्रभावित हो रहा है।”²⁴

बाज़ारवादी नीति के कारण फैल रही ऐसी अराजकताओं विकृतियों को देवताले की ‘पुस्तक मेले में’ शीर्षक कविता में चित्रित की है। अपने ‘माल’ की बिक्री को ज़्यादा मुनाफेदार बनाने के लिए विज्ञापनों का प्रयोग करना इस बाज़ारू संस्कृति की नीति है। साहित्य के क्षेत्र में भी विज्ञापनों की मोहक लुभावनी संस्कृति की साजिश चल रही है।

उधर बाहरवाले माइक वर

घोषणा हो रही है

कि महामहिम के चरण पुस्तक प्रदर्शनी प्रांगण में पड चुके हैं

और वे अपने स्वलिखित किताब पर

खुद हस्ताक्षर कर देंगे खरीदने वालों को

वे कउण्टर पर विराजमान हैं गणेश जी की तरह”²⁵

असल में बाज़ारू संस्कृति ने भारतीय संस्कृति के विभिन्न पहलुओं के साथ खिलवाड की है। व्यक्ति को मात्र बेचनेवाला वा खरीदनेवाले के दायरे में सीमित करनेवाली यह बाज़ारू संस्कृति ने व्यक्ति संबन्ध और सामाजिक संबन्ध तहस-नहस कर दिये हैं।

4.3 मीडिया संस्कृति की चुनौती

संचार-व्यवस्था का दिन-ब-दिन विकास हो रहा है। भूमंडलीय समाज में मीडिया के ज़रिए जनता पर भोगप्रधान भौतिकवादी संस्कृति थोपने की साजिश चल रही है। मीडिया को वस्तुनिष्ठता और सच्चाई पर आधारित और लोकतंत्रीयता की रक्षा करनेवाले माध्यम के रूप में मानते हैं। मगर वर्तमान भूमंडलीय बाज़ार की वह दौर मीडिया को भी मुनाफे की खातिर चालू करनेवाले माध्यम बना दी है। सनसनी खबरों को महत्व देना, वैयक्तिक जीवन के सुख-दुखों को भी मार्कटैसिंग करना, झूठ को भी टेढ़े मेढ़े करके सत्य स्थापित करना आदि मीडिया संस्कृति की नीति बन गई है। शोषितों वंचितों और दलितों के लिए आवाज़ उठाने का सवाल ही नहीं। मुनाफा और संचय मीडिया संस्कृति की धुरी है।

मीडिया के लिए सब कुछ बस एक खबर है। कोई भी बात हो, उसे कैसे दिलचस्प बनाकर पेश करना है, कैसे इस मुद्दे को सनसनी बनाकर अपना रेटिंग बढ़ाना है, यही मीडिया जगत की सोच है। संवेदनशून्य बनकर व्यक्ति को मात्र एक 'वस्तु' या चीज़ बनाकर प्रस्तुत करना ही मीडियावालों की वास्तविकता है। मीडिया संस्कृति की घुसपैठ से हमारे अन्दर की कोमल संवेदनाओं, भावनाओं का अंत हो गया है। मृत्यु को भी ऐसी सनसनी खबर बनाकर वे पेश करते हैं-

“मोक्ष मिल गया - हो गया कल्पवास
कहने लगे आसपास के इकट्ठा लोग
अखबार के लिए कहानी गढ़ते सोचने लगा
एक पत्रकार - इस धर्मनिष्ठ मरण के लिए
मंगू के परिवार को मिलना ही चाहिए मुआवजा
या मरणोत्तर कोई पुरस्कार”²⁶

पवित्र स्नान के दिन हुई मृत्यु को पत्रकार मनोरंजनात्मक बनाकर बेचना चाहता है। क्योंकि अखबार के लिए, उसके पाठकों के लिए (जो भूमंडलीय उपभोगी दुनिया के सदस्य है) सच का नहीं मनगढ़त कहानी की ज़रूरत है। इसलिए ही मौत को भी सनसनी खबर बनाने की कोशिश वह करते हैं। पत्रकार का सरोकार न सच से है और न संवेदना से। उनका सरोकार मात्र मुनाफे से है। यही मीडिया संस्कृति की रीढ़ है।

मीडिया की प्रतिबद्धता मानवीयता के प्रति बिलकुल नहीं है, बल्कि धन और सफलता के प्रति है। इस के लिए सच के साथ खिलवाड करने से भी मीडियावाले हिचकते नहीं है। सरकारी दूकान से मिली रेशन में कीड़ा-फफूँद-कचरा भरा था। इस मुद्दे को लेकर चैनल में चर्चा हो रही है, जो महज एक दिखावटी दुनिया पैदा कर रही है। सवाल सिर्फ सवाल के लिए किये जा रहे हैं, जवाब की प्रतीक्षा उन्हें नहीं। चैनल देखनेवालों को वही चैनल पर टिके रखने के लिए वे प्रयत्नरत है। इसलिए जवाब लिये बिना ही वे ब्रेक पर चले जाते हैं। ताकि सस्पेन्स वैसे का वैसे बने रहे। आँखों के सामने पेश किये मिलावटी रेशन को भी मैला मानने के लिए सबसे सबूत मांगन और सवाल-पे-सवाल उठाना आदि मीडिया धंधे की सबूत है।

“साफ करके तो आ जायेगा न काम में”

बोली अम्मा एक

“अब का साफ होई

पहले ही साफ कर दिया सरकार

और फिर दूकानदार ने.....”

बात जारी रहेगी कहकर

लड़की ब्रेक में चली गयी”²⁷

सरकार ने गाँववालों के लिए खराब रॉशन का वितरण किया है। यही वास्तविक मुद्दा मीडिया के लिए महत्वपूर्ण नहीं है। खबरों को अपनी मर्जी के अनुसार ढालने की वजह से सच्ची खबर भी हमेशा नेपथ्य में ही रह जाती हैं।

“जख्मों-धब्बों और काले धंधों को चाक करती
छपी अखबारों में चिट्ठियाँ तुम्हारी हज़ारों
अब क्या लिखोगे?”²⁸

इस चमकदार जनतन्त्र में जनता का नमोनिशान नहीं है। यही वास्तविक समस्या है। लेकिन मीडिया चाहे वह अखबार हो या टी.वी दोनों सत्ता के साथ जुड़े हुए हैं। इसलिए वह यथार्थ समस्या को अंधेरे में धकेलते हैं। और वास्तविक खबर के बनावटी रूप को अहम मुद्दा बनाकर प्रेषित करते हैं। इससे जनतन्त्र की पराजय होती है। क्योंकि सच जानने का लोगों के हक को यहाँ ठुकरा दिया है। जो वास्तव में एक सही जनतंत्रीय देश के लोगों का हक है। मीडिया संस्कृति के मुनाफे पर टिकी बाजारू नीति भारतीय जनतांत्रिक व्यवस्था के अस्तित्व के लिए चुनौती बन गई है।

मीडिया की बहुरंगी शक्ति झूठ को भी सत्यनिष्ठ बनाने में सक्षम है। कोई भी धनी व्यक्ति मीडिया का इस्तेमाल करके खुद को मशहूर बना सकता है। भ्रष्टाचार में लथपथ राष्ट्रीय नेताओं को, गरीबों की मेहनत का शोषण करनेवाले धन्नासेठों को मीडिया तंत्र के तहत सफेदपोश और आदर्शवान स्थापित करते हैं। मज़बूरी, भूख और गरीबी के कारण चन्द रुपए, जूते-रोटी आदि की चोरी करनेवाले हाशिएकृत लोगों के बचाव में मीडिया संलग्न नहीं है। मीडिया के सरोकार इन अमीर, भ्रष्टाचारी धोखेबाज़ वर्ग से हैं। इसलिए देवताले जी पूछता है-

“क्या यह बहुत कठिन विषय है
जो हमारी समझ में नहीं आ सकता

छोटे-छोटे चोरों को कडी सज़ायें
 और बड़े चोरों को ओहदा बड़ा सार्वजनिक अभिनन्दन
 गले तक विज्ञापन में डूबे अखबारों में हर दिन फोटू”²⁹

यह कविता वास्तव में मीडिया और राजनीति के प्रदूषण को उद्घाटित करती है। यथार्थ पहलुओं पर पर्दा डालकर गलत को सही स्थापित करने पर समाज में अराजकता फैल सकते हैं। इसलिए इस विषय को समझने की उम्मीद कवि पाठकों से कर रहे हैं।

मीडिया द्वारा अपराधी-व्यक्ति को भी ईश्वरीय आभा से मंडित कर देनेवाली प्रक्रिया को उन्होंने ‘यहाँ अश्वमेध यज्ञ हो रहा है’ कविता में ज़ाहिर किया है।

“अखबारों की बेशकीमती मशीनें
 प्रतिष्ठित लोगों की नामावलियाँ और फोटुएँ
 कम्पोज़ आदि कर रही है
 और यज्ञ कुंड के पास बैठे हुए
 अपराधी चेहरों पर
 ईश्वरीय आभा मँडराते देख
 फोटू खीचनेवाले यन्त्र हक्के-बक्के रह गए हैं।”³⁰

राक्षस को भी देवता बनाने का मीडिया का यह षड्यंत्र चिंताजनक है। वास्तव यह है कि जो असल में कुरूप, बदमाश और झूठा होता है, वही मीडिया के सहारे खुद को सुन्दर, सदाचारी और सत्यवान स्थापित करने में संलग्न है। इस के लिए वे सामाजिक कार्यक्रमों में सक्रिय भागीदारी का दिखाना करते हैं। मीडिया की प्रतिबद्धता मुनाफा अथवा धन प्राप्ति के कारण इस मामले में उन्हें भरपूर सहायता प्राप्त होती है।

मीडिया के द्वारा भारतीय मध्यवर्गीय जनता पर फिर से उपनिवेशीकरण हो रहा है। यह उपनिवेशीय तंत्र विज्ञापन के ज़रिए उपभोक्ता के लिए मोहक लुभावने वक्तव्य देकर अपने जाल में फंसा रहे हैं। विज्ञापनों की चमकती दुनिया परोक्ष रूप से हमें दिमागी गुलामी की ओर ले जा रही है। इस मकडजाल के पीछे की साजिशों को कवि खूब पहचानते हैं-

“असंख्य आँखों से दिखाई दे रही
चमकती चीज़ों के पीठ के पीछे
स्याह स्मृतियाँ ही नहीं साजिशें भी है खतरनाक
वक्त नहीं है
समय की इस ऊँची कूद को कोई भी नाम दो”³¹

हमारे सामने उपस्थित इस चमकदार दुनिया की सच्चाई एकदम भयानक है। सुन्दर और खुबसूरत बनकर पेश करनेवाली चीज़ों में भी अंधेरा भर चुका है। इस चमकती दुनिया के सम्मोहित सौन्दर्य में पडकर अंधे बन गये उपभोक्ता वर्ग इस अंधेरे को पहचान नहीं पा रहे हैं। दिन-ब-दिन वे इसमें फंसते जा रहे हैं। मीडिया के द्वारा संप्रेषित चीज़ों में सच्चाई अथवा यथार्थ न के बराबर है।

“चमकदार और सुन्दर होकर
चीज़ों में भर चुका है अंधेरा
उन चीज़ों में भी
जो अभी दिखाई नहीं दे रही”³²

मीडिया के द्वारा प्रेषित इमेज को ही सही मानने की विडम्बना वर्तमान भारतीय जनता को विनाश की ओर ही ले जा रही है। प्रायः यह इमेज कई तरह के उच्च तकनीकों से परिकल्पित होगी। मल्टि-मीडिया के सहारे चीज़ों को आकर्षक

बनाकर प्रस्तुत करने के पीछे मुनाफेवाली बाज़ारू नीति है। यह साजिश प्रायः विदेशी कंपनियों में उत्पादित वस्तुओं के लिए ही ज़्यादा हो रही है। क्योंकि वे ही आर्थिक रूप से इसके लिए सक्षम हैं। इन तमाम आर्थिक और विज्ञापन साधनों के ज़रिए वे भारतीय जनता को पुनः उपनिवेशन की ओर ढकेल रहे हैं।

मीडिया सच के साथ खिलवाड करके उसे नये तरीके से प्रस्तुत करता है। इसके अलावा सच को मिटाने में और उसे कम महत्व देते हुए आम जानकारी की तरह प्रस्तुत करने में भी मीडिया समर्थ है। ऐसे में यथार्थ समस्याओं से जनता का ध्यान हट जाता है। सूचना तंत्र इतना ताकतवर है कि वह खुद तय करता है कौन-सी मुद्दा जनता तक सही तरीके से पहुँचे और कौन-सी मुद्दा तिरस्कार योग्य है। वर्तमान दुनिया आज नारी शोषण जैसी ज्वलन्त समस्या का सामना कर रही है। लेकिन मीडिया जगत के लिए वह बेकार की खबर है। क्योंकि मीडिया शोषितों के साथ नहीं शोषकों के साथ सरोकार रखते हैं। इसलिए ही एक अधेड उम्र के औरत ने बेटियों सहित कीटनाशक खा लिया तो उसके लिए अखबार में ज़्यादा एहमियत नहीं प्राप्त हुई।

“अखबार में इसे जगह मिली
 एक कॉलम डेढ़ इंच
 कोई झण्डा, फिर नहीं झुका
 राष्ट्रपति भवन, सर्वोच्च या छोटे-बड़े कानूनघरों और
 पवित्र थानों के जहाँ भी होते हैं कान
 उन पर जूँ तक नहीं रेगी”³³

वर्तमान उपभोगी दुनिया में ऐसी असुरक्षित माओं को बेटियों सहित आत्महत्या करने के अलावा और कोई चारा भी नहीं है। स्त्री को पूज्य माननेवाली

भारतीय सांस्कृतिक अस्मिता के लिए यह सबसे बड़ा संकट है। भारतीय सांस्कृतिक ग्रन्थों में हमेशा से ही नारी स्वतंत्रता की बात की है। आज के युग में सुरक्षित रहने की स्वतंत्रता भी उन्हें प्राप्त नहीं हो रही हैं। यह समत्व-निषेध और ऐसी सामाजिक व्यवस्था चुनौतिपूर्ण है। मीडिया के लिए ऐसी ज्वलंत समस्याओं से जूझना अर्थहीन है। इसलिए ही ऐसी खबरों को अनदेखा कर देते हैं।

मीडिया खबरों को अपने अनुसार ढालना भी जानता है और रोकना भी। बारिश की तबाही से कितने मरे, जाड़े और लू से कितने मरे यह सब बताया जाता है। लेकिन-

“हटरों-जूतों-लातों
और बलत्कारों के बारे में
कोई नहीं बताता
कोई नहीं बताता उन हिकमतों के बारे में
मरने के पहले जिसने मार दिया जाता।”³⁴

जो वास्तविकता है जो बात सबके सामने लानी चाहिए वह बात छिपायी जाती है। हटरों, बलात्कारों जैसी अमानवीय हरकतों से हो रही मृत्यु को छिपाते हुए मीडिया सच्चाई के साथ खिलवाड़ करते हैं। भूख या गरीबी के कारण मरनेवालों को भी बीमारी मृत्यु के अन्तर समाहित करके गलत सामाजिक नीति, और समत्व निषेध पर पर्दा डालने का कार्य अत्यंत चिंताजनक है। मीडिया द्वारा बता रही मृत्यु संख्या के वास्तविक हेतु को जानने या समझने की कोशिश वर्तमान दुनिया के व्यस्त, भागमभागम के ज़िन्दगी जीनेवालों में कतई नहीं है।

अखबारों द्वारा पेश कर रहे कृत्रिम व झूठी खबरों को पढ़ने के लिए अभिशप्त है आज के आदमी। मौत को, बड़ी-सी-बड़ी विपत्तियों को, लूट-मार या

प्राकृतिक संपदाओं को भी मात्र खबर बनाकर प्रस्तुत करनेवाली मीडिया संस्कृति की इस प्रवृत्ति को देवताले जी 'हिंसक समय में' कविता में चिह्नांकित किया है।

“और इसे भी पूजा कहा जा रहा है
यह युद्ध से भी बदतर युद्ध है
और करोड़ों आँखें इस सबको
सिर्फ खबरों की तरह पढ़ने को अभिशप्त है।”³⁵

हमारे आसपास हो रहे अमानवीय घटनाओं, हत्याकांडों, अराजकताओं को भी सिर्फ खबरों की तरह देखने के लिए वर्तमान पीढ़ी मज़बूर है। हमारी मानवीय संवेदनाओं का हास होने लगी है।

मीडिया संस्कृति की बिकाऊ मानसिकता की चुनौति अत्यंत भयानक है। मानवीय सहज व्यवहार नीति और नैसर्गिक मूल्यों का क्षरण हो रहे हैं। मीडिया संस्कृति के तहत झूठ का उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है, नैतिकता का हनन से रही है और दिखावटी संस्कृति पैदा हो रही है। भारतीय सांस्कृतिक विरासत ऐसी अपसंस्कृतियों के बीच डगमगा रही है। यह सांस्कृतिक संकट है जो मीडिया द्वारा दिन-ब-दिन सभी जगहों में सभी मानवों में प्रसारित हो रहे हैं। मीडिया की संस्कृति सिर्फ मुनाफे से जुड़ी है। मीडिया संस्कृति के प्रभाव लोगों में भी मुनाफेवाली सोच पैदा करने में संलग्न है। इस चुनौती के अनेक आयाम उनकी कविताओं में उभरकर आई है।

4.4 मानवीयता पर कुठराघात

मानवीयता मनुष्य होने की सबूत है। आज के भोग-प्रधान जीवन में मानवीयता या मनुष्यत्व जैसे तत्व न के बराबर है। मानवीयता से तात्पर्य है कि एक दूसरे के सुख-दुख में शामिल होना, दूसरों के लिए जितना हो सके काम आना

सबको समान समझना, अन्य जीव-जन्तुओं के प्रति करुणा, स्नेह भाईचारा का भाव रखना आदि। वर्तमान भूमंडलीय उपभोक्ता समाज का हर व्यक्ति आज खुद एक उपभोग वस्तु बन गया है। इसलिए उसके अन्दर की कोमल भावनाएँ संवेदनाएँ मृत-शील हो गयी। उसके जीवन के बाहरी दुनिया बाजार के द्वारा चालू है और भीतर लालसा का अभूतपूर्व वर्चस्व बरकरार है। ऐसी अवस्था में मनुष्यता का या कोमल भावनाओं का मिट जाना स्वाभाविक है।

आज का युग उपभोग और बाजारू नीति पर चलता है। दिमाग को अधिक से अधिक बिकाऊ बनाकर व्यक्ति यहाँ जीते हैं। दिमाग को ऐसे बिकाऊ बनाने का मतलब है, कम से कम भावुक बनना, संवेदनशीलता, करुणा, प्रेम, भाईचारा आदि सबकुछ कम होना। इस संवेदनशून्यता के शिकार समाज के हर व्यक्ति को बनना पड़ता है। कभी-कभी छोटे बच्चों को कभी-कभी गरीब या पिछड़े वर्गों को और कभी-कभी स्त्री, दलित या दमित लोगों को भी। सड़क पर खड़े सन्तरी का भूखे पेट घूम रहे बच्चे के प्रति व्यवहार संवेदनशून्यता के सशक्त सबूत है-

“मैं दौडा पर पहुँच नहीं पाया
 कि उसके पहले उठाया उसे
 सन्तरी ने कान उमेठ
 होश जैसे में आ
 वह पानी-पानी
 कहने लगा बरसात में
 फिर बोला बस्ता मेरा....
 तभी धक्का दे उसे
 पुटपाथ के हवाले कर
 जा खडा हो गया सन्तरी अपनी छतरी के नीचे”³⁶

भूखे पेट चल रहे वह बच्चा ट्राफिक के बीच अचकचा कर खड़ा था। इससे गुस्सा कर सन्तरी ने उसके पानी के लिए उमड़ रही चीख को भी अनसुना करता है। और उसे फुटपाथ की ओर धकेल रहा हैं। सन्तरी के लिए ट्राफिक जाम को सुधारना उस वक्त ज़्यादा अहम थी। बच्चे के प्रति उमड़ रहे यह नकारात्मक दृष्टिकोण संवेदनशीलता के अभाव और आत्मसीमितता के कारण है।

संवेदनशून्य और यान्त्रिक जीवन बितानेवालों की दुनिया में 'गरीब के लिए एक नींबू भी गुनाह बन जाता है। भूमंडलीय जगत के खुली आर्थिक नीति ने अमीर को और भी अमीर ओर गरीब को और भी गरीब बना दी अमीरों को उनके अमीरीपन उसके हक लगने लगे और गरीबों का शोषण करना आदत बन गये।

“मैं ने देखा - एक नींबू के पीछे दिहाड़ी पर आयी औरत को
 धिक्कारा जा रहा था
 वह किसी बड़े अफसरनुमा आदमी का बंगला था
 जहाँ सुबह से घास घाटती उस औरत ने
 एक बजे रोटी भकोसने जाने के पहले
 दरौती रखने हुए नींबू उठाया था”³⁷

नींबुओं से लदे-फदे पेड के होने के बावजूद भी उस गर्भवती मज़दूरिन पर नींबू उठाने के कारण बाई साहब का बिफरना, करुणा, आर्द्रता स्नेह जैसी भावनाओं के लिए शर्मनाक है जिसे भारतीय संस्कृति ने श्रेष्ठ मूल्यों की कोटि में गिनते हैं। कवि जानता है कि उस मेहनतकश औरत की आकाश छूत हैसियत के सामने एक नींबू और बाई साहब की बित्ता भर औकात है। उसके बावजूद भी वे नाइन्साफी को रोक नहीं सका। कानून को भी मच्छर समझने वाले अमीरों के सामने संवेदनशील व्यक्ति का, उसकी हमदर्दी का कोई मूल्य नहीं है। वर्तमान दुनिया के आदमी इतना

लगावहीन और आत्मकेन्द्रित हो गया है कि अन्याय के खिलाफ आवाज़ उठाने के लिए भी फुर्सत नहीं है।

मज़दूर वर्ग का शोषण संवेदनहीन मानव ही कर सकता है। मज़दूर वर्ग पहले से ही अनेक प्रकार की जीवन समस्याओं से जूझते रहते हैं। भूख, गरीबी, बीमारी और बेरोज़गारी ने उनकी ज़िन्दगी को उजाड़ने के लिए पर्याप्त था। उनके लिए छोटे-मोटे रोज़गार ही जीवन में मुक्ति-मार्ग प्रशस्त कर सकती है। ऐसे उपेक्षित या हाशियाकृत समाज के प्रति बेरूखी अत्यंत दयनीय और चिंतजनक है।

“तभी मैं ने देखा दृश्य दुख भरा
सन्तरी उसकी हड्डियों में डंडा टेंच रहा था-
‘उठ बे हरामघोर घास काटेगा कौन तेरा बाप टहलुए’
साथ के सन्तरी ने टिप्पणी की - ‘किसकों मीठी नहीं लगती
नींद फुकट की’ वह जग बैठा हड़बड़ाते
काटने लगा घास एकदम जैसे जैसे
उसकी नींद की गठरी में ही तैयार छिपी हुई थी दराती”³⁸

मज़दूर वर्ग पर हो रही ऐसी प्रताड़ना मानवीयता के लिए बड़ा संकट है और भारतीय संस्कृति के लिए भी।

प्रकृति के सभी जीव-जन्तुओं के प्रति भाईचारे की भावना मनुष्यता का लक्ष्य है। आज के मानव अपने फायदे के लिए इन्हीं का व्यापार करते हैं। कवि भी बकरों के साथ हो रहे इस नृशंस अत्याचार का साक्षी बना था।

छाती तक कद्दुओं से भरे ट्रक में
बकरों की लदान
.....

थाने के सामने ज़िन्दा बकरो को चढाया गया
पुलिसवाले हँस रहे थे।”³⁹

कवि को लग रहा है - बकरो के यह हालात करण दृश्य है। बकरो के साथ हुई यह बदसलूकी में छिपी अमानवीयता दिखाने के लिए कवि आगे कह रहे हैं-

“इसी वक्त यहीं
बकरे की जगह आदमी भी हो सकते थे
बकरो की तरह ट्रक पर मनुष्यों के लदान
और हंसते हुए पुलिस
और चुपचाप सबकुछ देखते हुए सौकडों लोग
मैं क्या कर पाता उस वक्त
थाने के बावजूद।”⁴⁰

उत्तराधुनिक उपभोगी दुनिया में मनुष्यों के यही हलात है कानून, न्याय, सत्ता कोई भी उसके बचाव नहीं कर सकता। उपभोक्ता दुनिया में मनुष्य भी बकरो की तरह जाने अनजाने शोषण का शिकार हो रहे हैं।

आज के आत्मकेन्द्रित मानव अपने यथार्थ को ही सबसे अहम समझते हैं। ऐसे लगावहीन लोगों के बीच कोई भी किसी का भी विश्वास नहीं कर सकती। आपसी प्रेम और रिश्ता चकनाचूर हो गये। संवेदनशून्य दुनिया में हर कहीं लूट, मारपीठ, खून आदि खबरों की भरमार है। ऐसे में कवि हिफासत करनेवाले प्रेम को दुनियावालों के लिए चाहते हैं।

“ज़रूरत है हिफाजत करनेवाले प्रेम की
क्योंकि न दिखाई देते भी हर क्षण
जिस तरह हमले हो रहे हैं सब पर प्रमाणित करते हैं

कि वधिक तैनात हैं हर अक्षांश देशान्तर पर
कि कस्साबों की गिरफ्त में है पशु-पक्षियों का खून, उनकी त्वचा”⁴¹

आज व्यक्ति के मन में स्वार्थ, लोभ, मोह, ईर्ष्या, घृणा, होड जैसी भावनायें घर कर चुके हैं। प्रेम-परोपकार, स्नेह, भाइचारा, करुणा आदि भावनायें मृत-शील हो रही हैं। व्यक्ति को यानी मानव को पशु से अलग रखनेवाले इन कोमल पक्षों का संकट, मानव-जाति को पशुवत् बना रहे हैं। मानवीयता का यह संकट मात्र भारत देश के लिए नहीं पूरी दुनिया के लिए विनाशकारी है। इसलिए ही आज यूरोपीय राष्ट्रों से भारतीय संस्कृति के स्वत्व की खोज करते हुए लोग आते हैं। क्योंकि वे जान चुके हैं कि तमाम भौतिक विकास और तकनीकी विकास एक थोथी कल्पना है। मानवीयता को, जीवन के कोमल पक्षों को उन्नत बनाकर आत्मिक उन्नति प्राप्त करना ही भारतीय सांस्कृतिक विवक्षा है।

4.5 यान्त्रिक संस्कृति का प्रभाव

आज का युग यन्त्रायुग है। तकनीकी ने आज इतनी प्रगति अपनाई कि जीवन के हरेक क्षेत्र में यन्त्रों का उपयोग होने लगे। यन्त्रों के लगावहीन और यान्त्रिक स्वभाव भी धीरे-धीरे मानव-मन को भी प्रभावित करने लगे। मानव और भी जटिल और व्यक्ति केन्द्रित हो गये।

आज के उपभोग केन्द्रित दुनिया में व्यक्ति और भी आत्मकेन्द्रित हो गयी। इसलिए उन्हें सिर्फ अपनी खुशी के अलावा दूसरों की खुशी, कामयाबी हजम नहीं होती। लेकिन सामाजिक अस्मिता में शामिल होने के लिए वह एक दिखावटी संस्कृति का सृजन कर रही हैं। संवेदनहीन, भावनाशून्य और यान्त्रिक होने के बावजूद भी वह खुद को एक सामाजिक अस्तित्व प्रदान करने के वास्ते बहुत ही संवेदनशील, भावनासंपन्न और सुसंस्कृत बनने का दिखावा कर रहा है।

“जाते वक्त वे कुछ इस तरह मेरा हाथ दबाते हैं
 जैसा मेरा ज़ख्म कब्र में बदलने वाला हो
 और वे इसके सख्त खिलाफ है
 मैं भी मुस्कराकर कहता हूँ
 अपना ध्यान रखना सब ठीक हो जायेगा
 कोई-कोई जाते वक्त इस तरह मुस्कुरा जाता है
 जिसका अर्थ ढूँढ पाना
 मुश्किल हो जाता है नींद आने तक”⁴²

सहानुभूति जताने के लिए जतानेवालों के दिखावटीपन को कवि इस कविता के द्वारा खोलकर रख दी है। रिश्ते, नाते संबन्ध सब में यह लगावहीनता है। क्योंकि उन्हें लगता है कि समकालीन समय में अकेला जीना ही बेहतर है। न कोई लगाव न कोई रिश्ता। सब के सब आत्मनिर्भर, आज व्यक्ति ऐसे आत्म केन्द्रित होकर जीना ही ज़्यादा पसन्द करते हैं। मुठभेड़ झक्की आदमी से कविता में बरसों बाद मिले अध्यापकजी से शिष्य अपने जीवन-विजय का रास इस तरह बताते हैं-

“सर ! अपने काम-से-काम रखता हूँ
 नहीं पड़ता किसी भी तरह की भानगड में
 अपने रास्ते आता-जाता हूँ
 आपकी कृपा से अपना घर हो गया है
 और बेटा विदेश में....”⁴³

अपने को एहसान फरामोश कहना कवि का लक्ष्य नहीं है। वह विवश है ऐसे सिमेट दुबके व्यक्ति के रूप में जीने को आजकल इसे एक सच्चाई के रूप में स्वीकृति प्राप्त है। इसी को जीवन-विजय का रास मानते हैं। यह आज के मानव की संकुचित जीवन-दृष्टि को सूचित करता है। लोग इतना यान्त्रिक हो गये हैं कि वह

सिर्फ अपने कामों से मतलब रखता है और बाकी सभी बाह्य आचरण, एक दिखावटी चीज़ है। यह यान्त्रिक संस्कृति व्यक्ति को अन्दर ही अन्दर खोखला बना रही है। मनुष्य का मनुष्य न बन जाना सबसे बड़ा संकट है।

4.6 न्याय व्यवस्था की असमर्थता का पर्दाफाश

हर समाज समता की मांग करता है। समता से तात्पर्य सभी प्रकार की समता से है यानी राजनीतिक, आर्थिक और, सामाजिक समता। कानून की व्यवस्था इस समता के तत्व को और भी सुगम और पारदर्शी बनाते हैं। समता-निषेध होने पर कानून का हस्तक्षेप अनिवार्य बनता है। न्याय व्यवस्था के नज़रिये में हर नागरिक समान है। आज के अर्थ केन्द्रित और अधिकार केन्द्रित समाज में समता का निषेध आम बात बन गई है। न्याय व्यवस्था में भी दरारे पड चुकी हैं। आज कल न्यायपालिका की अस्मिता पर ही प्रश्नचिह्न लग चुके हैं। क्योंकि अधिकार और अर्थ दोनों के सहारे कानून को घुमा फिराकर झूठ को सच स्थापित करने में धनिक या सत्ताधारी वर्ग सक्षम है। इस तरह न्याय व्यवस्था के सुगम संचालन के लिए वर्तमान दुनिया के अधिकार केन्द्रित व्यवहार एक तर्जन है।

समकालीन समय की खबरें न्याय-व्यवस्था को महज एक प्रहसन बना चुकी है। इसलिए आम जनता का भरोसा न्याय-व्यवस्था से उड रहे हैं। खासकर निम्न-मध्यवर्गीय जनता, शोषित, वंचित और हाशियाकृत वर्ग आदि न्याय-व्यवस्था की असमर्थता के शिकार बनते जा रहे हैं। उन्हें वह अधिकार और समत्व प्रायः न के बराबर है जिसकी अवधारणा भारतीय संविधान ने की थी। संस्कृति में न्यायालयों का महत्व भी इसलिए है कि समाज के कोई भी एक सदस्य सुसंस्कृत और सभ्य होने से वंचित न हो। समत्व निषेध सहिष्णुता की भावना को भी संकट में डालते हैं।

अर्थ केन्द्रित दुनिया में कानून सही सलामत नहीं है। कानून में कई सुरंग लगाकर सच को झूठ स्थापित करना, या फिर बिना मतलब की बातों के कारण न्याय में देरी लगाना आदि आज आम बात बन गये हैं। मुकदमे को लम्बा खींचकर न्याय की स्थापना में भी रुकावट पैदा कर देती है। समय पर मुकदमे खतम करके न्याय दिलवाने में न्याय व्यवस्था आज असमर्थ है।

“बरसों से चल रहे हैं मुकदमे
मुकदमे चल रहे हैं
किन्तु घोड़े अडे हैं फैसलों के
बढ़ रही है तारीखें
और सजा एक को भी नहीं हो रही
सेवानिवृत्ति के दरवाज़े पर खड़ा
राजस्व अधिकारी बडबडाता है।”⁴⁴

न्यायालय की कार्यवाही की सबसे बड़ी समस्या यहीं है कि मुकदमे को जल्दी से जल्दी सुनवाही करके न्याय दिलवाने में असमर्थ है।

भूमंडलीय समाज पूरी तरह धन और अधिकार की नींव पर चल रहे हैं। जिसके पास पैसा, पवर, और मन (Money Mind and Muscles) हो वह न्याय के मार्ग में लम्बी सुरंग बनाकर बच जाता है और कोई मज़बूरी में आकर चोरी की हो उन्हें जेल की रोटी खानी पड़ती है। न्याय व्यवस्था की यही असमर्थता के कारण बड़े-बड़े चोरों, डाकुओं को बेहिचक समाज में घूमने का, गलत काम करने का रास्ता मिल रहे हैं। मीडिया भी इनके साथ दे रही है-

“क्या यह बहुत कठिन विषय है
जो हमारी समझ में नहीं जा सकता

छोटे-छोटे चोरों को कड़ी सज़ाएँ
 और बड़े-बड़े चोरों का ओहदा बड़ा सार्वजनिक अभिनन्दन
 गले तक विज्ञापन में डूबे अखबारों में हर दिन फोटू।”⁴⁵

नई भूमंडलीय बाज़ारवादी सोच में हर चीज़ बिकाऊ लगती हैं। न्याय भी ऐसी चीज़ बन गये हैं। जिनके पास मनी मैन्ड और मसिलस है न्याय खरीद सकते हैं। न्याय दिलाने के लिए बैठे न्यायाधीश की मजबूरी को भी देवताले जी ‘किसने काला कोट तय किया होगा’ कविता में दिखाते हैं-

“बीस साल में एक भी दिन मैं हंस नहीं बन पाया
 शब्दों के कोल्डू के बैल की तरह
 खटता रहा आँखों पर सत्य की पट्टी बाँधकर
 पर न्याय का तोल नहीं निकला एक भी दिन”⁴⁶

न्याय दिलानेवाले सफेद और शुद्ध आत्मा वाला होना चाहिए। ऐसे लोगों को काला कोट पहनाया गया है। इस वत की विसंगति को कवि यहाँ दर्शाते हैं।

न्याय बहुरूपिए की तरह चेहरा बदलकर पहनने में समर्थ है। समय के अनुसार रंग-रूप बदलकर न्याय और सत्य घुमा फिराकर प्रस्तुत हो रहे हैं। कवि इस सच्चाई से वाकिफ है-

“न्याय उपस्थित होता है बहुरूपिए का चेहरा पहनकर
 मौसम के अपने आईनों में
 सत्य को विद्वेष करता हुआ
 ड्राइंगरूम के नीचे वातानुकूलित तहखानों में
 तस्खरों ने उगा लिए हैं धातु के कल्प वृक्ष
 टेलिप्रिन्टर अमृत-कलश हेलिकोप्टर की उडनपट्टी”⁴⁷

न्यायपालिका की हर कमज़ोरी पर चोट डालते हुए देवताले की एक कविता है इस तरह मुकदमे चले। गवाहों को डरा-धमकाकर बयान बदलवाना और अनुकूल फैसले न मिल जाने के डर से न्यायाधीश की तबादला करवाना या फिर अपने अनुकूल फैसला मिलने के लिए एक अलग बेंच को नियमित करना जैसी अन्याय सिर्फ और सिर्फ धन, अधिकार और ताकत के बलबूते पर हो रहे हैं। इन सबके खिलाफ कवि यहाँ उतर आये हैं-

“कुछ हत्यारे जिन्हें कम से कम पाँच बार
मौत की सज़ा हो सकती थी
गवाहों की मदद और हिफाज़त के लिए
इस कदर आगे आये गवाह
टूट गये और अपने नये बयान में
उन्हें कहना पडा-
कि अंधेरे और धुँ में वे
कुछ नहीं देख पाये”⁴⁸

जिन्हें सजा मिलनी चाहिए उन्हें निर्दोष स्थापित करने के लिए मुकदमे चलाये जा रहे हैं। उस के लिए ‘खास अदालत बैठी’ और ‘फिर जज का तबादला हो गया’ कैसे भी करके न्याय को उनके अनुकूल बनाते हुए फैसला लाया गया कि वे निर्दोष थे या अपराधी नहीं थे।

एक नींबू के पीछे कविता में मज़दूरन पर बरस पडनेवाली बाई साहब को टोकने पर कवि को यह उत्तर मिलता है-

“कानून को हम मच्छर समझते हैं मच्छर
बडा आया कानून बतानेवाला।”⁴⁹

कानून के हालात आज ऐसा बन गया है कि न वह सीधे और सूक्ष्म ढंग से विवेचन करके सही फैसला सुना सकते हैं। वह सबूत पर ही निर्भर है। आज की अर्थ केन्द्रित, अधिकार केन्द्रित दुनिया में सबूत को बनवाना और मिटाना आसान बात बन गयी है। इसलिए न्याय के क्षेत्र भी वर्चस्व वालों के हाथों के कठपुतली बन गये हैं। यह न्याय व्यवस्था की वजनहीनता की सबूत है। सबको समान समझकर सबको सही न्याय दिलाने के लिए यह कानून व्यवस्था आज न्याय दिलाने में असमर्थ बनती जा रही है।

4.7 छलनामय राजनीतिक संस्कृति

राजनीति राज्य की नीति है। राज्य की ऐसी नीति जो राज्य में सर्वत्र व्याप्त रहकर जनता की सुख शांति की व्यवस्था करें। भारतीय राजनीति ने सबको समान माना है। राजनीतिक व्यवस्था से तात्पर्य यह है कि राज्य का वहाँ की जनता की देख भाल। शुरुआती दौर में नेता-वर्ग जनता के लिए काम करते थे। आजकल वे सिर्फ और सिर्फ अपने लिए काम करते हैं। आज़ादी के पूर्व भारत देश स्वतंत्रता के लिए इकट्ठा खड़ा था। उस समय आज़ादी प्राप्त होने के बाद की राजनीति का, शासन का नेताओं का सुन्दर स्वप्न उनमें बसे थे। लेकिन स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद राजनीति का स्वरूप ही बदल गया। वर्तमान समय की राजनीति अनेक राजनीतिक दलों का खुला मैदान मात्र रह गयी है। “आज समाज में राजनीतिक दलों के लिए केवल सत्ता ही सब कुछ है और यहाँ की जनता उनके लिए एक खिलौना है। जिसके साथ नेता राजनीति का खुले आम खेल खेलते हैं। नेता केवल कुर्सी पर आसीन होने तक कोखले अर्थहीन वायदे करते हैं। झूठे आश्वासन नारे बाज़ी आम आदमी का शोषण आज की राजनीति की खासियत है।”⁵⁰

राजनीति भी आज भूमंडलीय हवा में प्रदूषित हो रही है। भूमंडलीय उपभोगवादी और बाजारू सोच ने नेता वर्ग को भी स्वार्थ लोलुप अधिकार मोही और लालची बना दिये। अपना उल्लू सीधा करने के लिए तरह-तरह के स्वभाव धारण करनेवाले राष्ट्रीय नेताओं के चरित्र पर व्यंग्य 'राष्ट्रीय पशुओं के बारे में' कविता में किया गया है-

जंगल में बड़े-छोटे मन्तियों की तरह
शेर-बाघ
महाजनों जैसे चीते
जिनके साथ झुंड के झुंड
लकडबग्घे-जंगली कुत्ते
जंगलों के पशुओं की चर्चा
शोभा नहीं देती कविता में।”⁵¹

(राष्ट्रीय पशुओं के बारे में - उजाड में संग्रहालय - पृ. 48)

जनता की तुलना हाथी से सब कुछ देखते हुए जानते हुए भी सहने के लिए अभिशप्त जनता की तुलना, हाथी से की है। राजनीतिक दलों के आम सदस्यों को रीछ बनाकर कवि ने प्रस्तुत की है। उन्हीं रीछों के पीठ के सहारे चालाक लोमड़ी यानी दल के प्रमुख नेता लोग पेड पर चढ़कर यानी पार्टी के हर पडाव को जीतकर अपने लिए सभी मीठे अंगूर हासिल कर देते हैं। स्वार्थ से प्रेरित नेता लोगों को चालाक सियार बताकर कवि ने उनकी चालाकी का, पर्दाफाश किया है। ऐसे सत्ता और चालाक सत्ताधारी लोगों के चेहरे को सफल ढंग से उतारा गया है। सत्ता में अपने को बनाये रखने के लिए गिरगिट की तरह रंग बदलना उनकी आदत हैं। अपनी स्वार्थता के लिए वे कुछ भी करने के लिए तैयार हैं। ऐसे लोगों की तुलना जंगली जानवरों से करना उनके लिए भी कविता के लिए भी शोभा नहीं देते।

अधिकार की ताकत इतना ज़्यादा है कि आज व्यक्ति राजनीति में सिर्फ अधिकार प्राप्त करने के लिए ही उतरते हैं। नेताओं के लिए राजनीति राष्ट्रीय धरातल पर नहीं वैयक्तिक धरातल पर केन्द्रित स्वार्थपरायणता का एक साधन है। विडम्बना यह है कि जनता द्वारा अधिकार की तख्ती पर बैठ कर अधिकार प्राप्त हो जाने के बाद उनका इरादा बदल जाता है। सच्चाई के लिए शोषितों के साथ खड़े रहनेवाले व्यक्ति भी कभी-कभी अधिकार की भुलावे में सम्मोहित हो जाते हैं। अधिकार के भ्रमक जाल में फँसनेवाले लोगों को कवि की पैनी दृष्टि ने पहचान की है। इस सच्चाई से वाकिफ होकर वे चिंताकुल हैं और दुखी भी-

“अपकी संघर्षपूर्ण ज़िन्दगी, सादगी
और कम ज़रूरतों की तारीफ और तस्दीक
इसी रोशनी में होती
जो आप दो टूक शब्दों में जता देते
“मेरी धूप मत रोकिये में सख्त खिलाफ हूँ
अपने इस्तेमाल किये जाने के।”⁵²

कवि जानता है कि ‘क्रूरतम रक्तपात से लथपथ विराट सांस्कृतिक मलबे पर रखा हुआ है सिंहासन। उस सिंहासन पर तिलक करने जाने के लिए तैयार व्यक्ति से वे सिर्फ इतना कहना चाहते हैं - उनके बुलावे को नकारने का दुर्लभ मौका आपने गँवा दिया। अगर आप इस बुलावे को नकारे होते तो इंसानियत के, सच्चे हिमायती के बतौर दिलों और इतिहास में आपकी जगह होती।

अधिकार छिन जाने के बाद मिलने पर उसकी ताकत दुगुनी होगी। प्रतिशोध भी अधिकार के साथ मिलकर और भी खतरनाक हो जायेंगे। लोगों के सामने मतदान के वक्त गिडगिडानेवाली मेमना भी गद्दी प्राप्त हो जाने के बाद

हिंसात्मक रवैय्ये अपनाती है। ऐसे नेताओं के लिए चीते को प्रतीक बनाकर प्रस्तुत किया है।

“....गद्दी नशीन होते ही भयावह ढंग से
हिंसक हो जाते हैं जब गिडगिडाते हुए मेमने
तो यह तो चीता है
कितना भूखा हो जाएगा
जुकाम ठीक हो जाने के बाद”⁵³

नेता वर्ग सिर्फ कुर्सी पर आसीन होने तक ही वायदे करते हैं। झूठे वादे, झूठे आश्वासन नारे बाजी करके वे चुनाव जीतना चाहते हैं। कुर्सी प्राप्त करने के बाद यह सब भूल जाते हैं। पाँच साल बाद वे फिर आम जनता के शोषण करने के लिए तरह-तरह के झूठे वादों के साथ पहुँच जाते हैं। उत्तम और श्रेष्ठ शासन की चाहत में आम जनता बार-बार इनके झूठे आश्वासन में फंस जाती हैं। फिर उन सबके बीच अधिकार लिप्सा, लालच, और धनमोह के कारण उमड रहे अनगिनत झगड़ों बेवजह के प्रहसनों को भी झेलने के लिए अभिशप्त है आम जनता।

सुख के अंडे देनेवाली मुर्गी को लाने के वादा करके (यानी सुख और शांति भरा शासन) आये नेताओं का चित्रण ‘वो पाँचों और हम सब’ कविता में हुआ है। गाती हुई दुनिया और हवा में उडती हुई झरना जैसे खोखले निरर्थक और नामुमकिन वादों सहित ये नेता लोग आम जनता के सामने प्रकट होते हैं। उन्हें आम वोटों की रज़ामंदी यानी वोट चाहिए; महल तक यानी शासन तक पहुँचने के लिए। इसके लिए पाँच साल का मोहलत भी वे मांगते हैं।

“हम सबसे उन्होंने मांगी राज़ामंदी-
महल का रास्ता बताया हमने

हमने बिठाया घोड़ों पर उनको
 हमारे घोड़ों के छिले हुए
 पुट्टों पर एड लगाकर
 वे गये हमारे लिए
 ढूँढने उस मुर्गी को

 पर पाँचों ने
 मुड़कर भी नहीं देखा
 साल-दो साल
 और फिर पाँच साल
 मुसीबत के कुँ में गुडुप हो गये”⁵⁴

हर पाँच साल के बाद वे रसद और मोहलत माँगते हुए फिर से सामने आयेंगे। अभावग्रस्त जनता के लिए इन पर विश्वास करने के अलावा और कोई चारा भी नहीं है। समाज के अभावग्रस्त लोगों की समस्याओं का फायदा उठाते हुए उन्हें कमीज़, स्लेट और दुम्मट धोती देने का वादा करते हुए वे आते हैं।

“रोशनी-सडक हवा
 पानी भावा और
 गाती हुई दुनिया के किस्से तक दे दिये
 तुरत-फुरत शब्दों में”⁵⁵

बातों में वादों के ज़रिए उन्हें सब कुछ दे दिया जाता है। लेकिन पाँच साल के बाद बगैर सोने के पंखोंवाली मुर्गी के बिन अंडा खाली हाथ वे आये। यही वर्तमान राजनीति के सही चित्र है। खोखले वादों के ज़रिए अधिकार प्राप्त करते हैं।

उसके बाद वे सब भूल जाते हैं। पाँच साल के बाद ही उन्हें फिर आम जनता याद आती है। समकालीन राजनीति की सत्ता व्यवस्था की इस दुर्दशा को कवि ने जहाँ चित्रित की है।

गिरगिटया नेताओं की सत्ता और कुर्सी बनाये रखने की होड में प्रजातन्त्र की हालत बिगड गयी। लोकतंत्र, कानून और संविधान प्रायः इन स्वार्थी नेताओं के कब्जे में है। वे लोग इन्हें अपने हिफासत के लिए या फिर अपने मतलब निकालने के लिए प्रयोग में लाते हैं। ऐसे में देश की प्रजातान्त्रिक व्यवस्था की अस्मिता तहस-नहस हो जायेगी। इसलिए कवि भारत देश को एक पोलियो ग्रस्त लुंज-पुंज बच्चे से तुलना कर रहे हैं।

“दरअसल मैं कुछ ज़्यादा नहीं जानता हूँ
सिवा इसके कि ने लोग एक मरियल घोडे पर
पोलियो ग्रस्त उस लुंज-पुंज बच्चे को बिठला कर
आखिर क्यों ढोल पीटते हुए इस तरह करते हैं
सब कुछ सडकों पर, सभा ग्रहों में और
उस बडी इमारत के चेहरे पर क्यों एक भी
शिकन तक नहीं पड़ती।”⁵⁶

ऐसे अभावग्रस्त देश में प्रजातान्त्रिक व्यवस्था को सत्ताधारियों को देश की बदहालत परेशान नहीं करते। कवि इसलिए चिंताकुल है।

आज भारत देश की प्रजातान्त्रिक व्यवस्था के तहत आम जनता के शोषण ही हो रहा है। प्रजातन्त्रियों के गलत कारनामों पर सबसे ज़रूरी काम कविता चोट पहुँचाती है। वे इतना संवेदनहीन और अर्थ-केन्द्रित हो गये हैं कि नगरपालिका के चुनाव जीतने के लिए औरत के लाश के साथ सौदेबाजी करने में भी शर्माते नहीं।

अपनी ताकत और पैसे के बलबूते वे किसी के साथ भी ऐसी निन्दनीय हरकत करने से हिचकते नहीं है।

“प्रजातन्त्र की रथ-यात्रा निकल रही है
औरतों और बच्चों को रौंदा जा रहा है
गुंडों और वोटों की ताकत से हतप्रभ लोग
खामोश खड़े है।”⁵⁷

(सबसे ज़रूरी काम - आग हर चीज़ में बताई गयी थी - पृ. 87)

राजनैतिक नेताओं के लिए देशीयता की जगह वैयक्तिकता ज़्यादा महत्वपूर्ण हो गये हैं। इसलिए राजनीति में भ्रष्टाचार को बढ़ावा मिल रहे हैं। राजनेताओं की कमज़ोरियों का उनके यथार्थ का चित्रण ‘युवा विधायक’ कविता में हुआ है। भ्रष्ट व्यक्ति परिवार के लिए भी खतरनाक है देश के लिए भी। इन युवा विधायकों का नाता न परिवार से है और न जनता से। जनता की भलाई नहीं अपनी एनजोयमेंट उसे ज़्यादा प्यारी है।

“सर्कीट हाऊस में रास्ता देख रहे होंगे मुलाकाती
रात को ज़रूर आना वहीं
गोआ की ताड़ी का इन्तज़ाम है बढिया”⁵⁸

नेतावर्ग की मूल्यहीनता यह कविता दर्शाती है। वर्तमान समाज की विडम्बना यह है कि यहाँ उपस्थित सरकार महज एक बेजान व्यवस्था बनकर खड़ी है वह ताकतवर लोगों के हाथों की कठपुतली बन गयी हैं।

“ताकतवर लोग
उसके ही आदमियों से
खरीद रहे हैं ताकत अपने लिए

और सरकार भी सरकार बनने के लिए
झाँकती है दीनों की दुनिया में”⁵⁹

इस ताकत के बल पर अपने खिलाफ उठनेवाले सवालियों को निश्चेत करने की कोशिश भी वे करेंगे। पैसों को न्योच्छावर कहकर वह अपने गुलामों की एक झुंड बनाई है, जिनके सहारे अपनी गुंडागिरी कर सके।

“मैं नहीं भूल पाता उस कन्या की दुर्दशा का दृश्य
जिसने एक जन सेवक प्रधानमन्त्री की चुनावी सभा में
कुछ पूछने की गुस्ताखी की थी
और इस दुस्साहस के लिए उसी जगह उसे भीड़ में
लड़कियों औरतों ने
खींचा-घसीटा और नोचा था।”⁶⁰

चन्द्रकान्त देवताले यहाँ राजनीति के समस्त अनछुए पहलुओं को अपनी कविताओं में उद्घाटित किया है। आज की भ्रष्ट और कुत्सित राजनीति, चुनाव के खोखलेपन, नेतावर्ग की गुंडागिरी, झूठे वादे, कुर्सी मोह जैसे राजनीति के सभी प्रकार के छल कपटों का खुला अंकन इन्हीं कविताओं में हुआ है। ऐसी छलनामय राजनीति भारतीय सांस्कृतिक अस्मिता के लिए प्रश्न चिह्न खड़ा कर देती हैं।

4.8 अवमूल्यन की अपसंस्कृति

संस्कृति का नियामक तत्व है मूल्य। भारतीय संस्कृति मूल्यों के आधार पर बनी है। समाज, शासन और राजनीतिक व्यवस्था, आर्थिक व्यवस्था जैसे सभी जगहों में मूल्य व्यापक है। इन सबको पवित्र और शुद्ध बनाये रखते हुए मानवीयता पर आधारित साझी संस्कृति के निर्माण करने में मूल्यों की अहम भूमिका है। मूल्यों पर आधारित भारतीय संस्कृति में समय के बदलाव के कारण विभिन्न प्रकार के

बाहरी तत्वों का समावेश हो गया। तदनुरूप मूल्य में वैरुद्ध्य उपजने लगे। यह वैरुद्ध्य मूल्य विघटन की ओर भारतीय संस्कृति को ले गया। पाश्चात्य संस्कृति के अन्धानुकरण वैज्ञानिक और प्रौद्योगिकी के दुरुपयोग आदि ने भारतीय पारंपरिक मूल्यों को विघटित कर दी। नतीजतन भारतीय संस्कृति आज जो संस्कृति पनप रही है, वह उपभोग पर आधारित अपसंस्कृति है। उसमें आत्मीयता त्याग की भावना दूसरों के हित की अवधारणा आदि न के बराबर है। सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक मूल्यों के हास वर्तमान युग का सबसे बड़ा संकट है।

सामाजिक मूल्य क्षरण

एक सुव्यवस्थित और स्वस्थ सामाजिक जीवन में उस देश की सांस्कृतिक पहचान निहित है। समाज की नींव मनुष्य के आपसी संबन्ध पर आधारित है। प्रेम, भाईचारा, करुणा मनुष्यत्व जैसी भावनायें सामाजिक संचालन में सुगमता प्रदान हैं। यही भारतीय सांस्कृतिक धरोहर है। वर्तमान भूमंडलीय समाज में भोग, स्वार्थ, लोभ, मोह, ईर्ष्या जैसी भावनायें पनप रही हैं। यही स्वस्थ सामाजिक व्यवस्था के लिए खतरा है।

बाज़ारवाद और उपभोक्तावाद ने मनुष्यत्वविहीन समाज को जन्म दिया। अधिक से अधिक सुख संपत्ति के साधन जुटाने की होड़ में मानवीयता, भाईचारा, परस्पर विश्वास आदि भावनायें लुब्ध हो गईं। आत्मकेन्द्रित लगावहीन स्वार्थी मानवों के समाज में जीने के लिए हर किसी को सावधानी बरतने की जरूरत है। क्योंकि भला चंग दिखनेवाला भी कब खतरनाक बन जाये समझ में नहीं आयेगा।

“हमारे समय का शायद यही होगा समाधि-वाक्य
हर कोई रहता था एक दूसरे से सावधान

यहाँ तक कि प्रेम में भी बरती जाती थी
भरपूर सावधानी”⁶¹

‘सावधान रहना है किसी अज्ञात व्यक्ति से’ यह हिदायत है और चेतावनी भी। क्योंकि वर्तमान समाज के हालात इतना विडम्बनात्मक है कहीं भी कोई भी दुश्मनी निकाल सकते है, जरूरी नहीं है, वह कोई दुश्मन ही हो, वह हमारे अपना भी कोई हो सकता है।

“अपने लोग किस तरह मारते हैं
यह सबसे खतरनाक सवाल है
और इसका जवाब
अपनों के हाथों मरकर भी नहीं दिया जा सकता।”⁶²

आज हर जगह जैसे रेलवे स्टेशन, बस स्टॉप, बड़े-बड़े मन्दिरों और प्रार्थनालयों में यह चेतावनी हम देख सकते हैं। लोगों के आपसी संबन्धों में किस तरह दरार आ गयी है। यह इससे साबित होते हैं। प्रेम जैसे पवित्र और निर्मल रिश्ते में भी यह चेतावनी शामिल है।

सच्चाई, इमानदारी, का कोई अर्थ नहीं रहा। यहाँ ‘इमान’ का महकमा कही भी नहीं है। समाज के हरेक इलाके में कपटता और भ्रष्टाचार ने कब्जा कर लिया है। ऐसे समाज में सांस्कृतिक विकास व व्यक्तियों का सुसंस्कृत होना असंभव है।

“मैं चाहता हूँ बताना कि बेहद मुश्किल है
कपट की इस आसानी को जीतना
कैंसर हर जगह है गाजरघास की तरह
स्कूल, थाना, हस्पताल, कचहरी और भाषा तक में
सैकड़ों गंठाने हैं जगमगाते बाज़ार के बावजूद

भव्य-बिशाल प्रवेशद्वार दिखने भर को
 पर बौना इतना हकीकत में
 कि सचमुच का आदमी कितना भी झुक जाए-सिर झुकाए
 फिर भी खडा रह जाए बाहर का बाहर”⁶³

नारी शोषण

भारतीय संस्कृति के मूल स्रोत वेदों और उपनिषदों में स्त्री महिमा का अंकन किया है। 33 करोड़ों देवी देवताओं की पूजा करनेवाले, हमारे समाज में औरतों को स्वयंवर का अवसर दिये जाते थे। बेटे को माँ के नाम से जोड़कर कहने की प्रथा भी थी जैसे कुंतीपुत्र, राधेय, देवकी नन्दन आदि। पुराणों में विद्याप्राप्त, शास्त्र में निपुण गुरु-पत्नियों का भी उल्लेख प्राप्त है। लेकिन आगे चलकर स्त्री की महिमा विस्मृत हो गयी। मनुस्मृति में मनु ‘न स्त्री स्वातंत्र्यमर्हते’ बताकर उन्हें चार दीवारों में कैद करने की कोशिश की गई। अबला नारी की कहानी को आगे बढ़ाते हुए भक्तिकाल के महाकवि तुलसीदास ने स्त्री को ढोल, गंवार, पशु की तरह मार खाने योग्य बताया। आंचल में दूध और आँखों में पानी भरकर वह बार-बार हमारे सामने दुर्बल बनकर आयी। आधुनिकता, उत्तराधुनिकता के प्रभाव ने स्त्री को एक अलग व्यक्तित्व प्रदान किया। स्त्री समत्व के नारे उठाकर स्त्री को पुरुष से कंधे मिलाकर चलने के काबिल बना दिये। घरेलू संघर्ष से जूझती रही नारी को शोषण उपनिवेशकाल में भी अलग आयामों सहित उपस्थित है। बाज़ार का हस्तक्षेप, अभोग को प्रामुख्य आदि के कारण स्त्री के अस्तित्व भी लडखडाने लगे।

समाज के मुँहेपन को दिखानेवाली कविता है देवी-वध। समाज के हर क्षेत्र में कर्मरत औरत, महज एक कामगार स्त्री नहीं, बल्कि उस देवी का ही रूप है, जिसे हम पूजते हैं। वर्तमान दुनिया की विसंगति की ओर कवि इशारा कर रहे हैं।

देवी जो कि एक औरत है उसकी प्रतिमा बनाकर पूजा करती है। लेकिन औरत जो कि देवी के समान ही पूजनीय है, उसकी निन्दा करते हैं। उसके महत्व को, समर्पण की भावना को, आत्मसम्मान को, मेहनत को सब अनदेखा कर देते हैं। आधुनिक मानव के दिखावटी धार्मिक आचरण के अन्तर्विरोध को कवि ने यहाँ दर्शाया है। समाज के हाशिएकृत वेश्या वर्ग, डायन जैसे लोगों में भी देवी का अंश निहित हैं।

“महानायकों महाकथाओं से रहित
खंख होते समय में पत्थर की तरह खड़ा रहा मैं देर तक
सोचने लगा जिन औरतों को
नंगा करके सताया और घुमाया जा रहा है
शायद वे भी पत्थर, मिट्टी-सीमेंट की कैद से
आज़ाद हुई होंगी।”⁶⁴

उपभोगवादी दुनिया में सभी चीज़ों को भोग की दृष्टि से ही देखते हैं। बाज़ार और मीडिया भी औरत को ऐसे पेश कर रही है। इससे युवा पीढ़ी के मन में वह एक माल बनकर उभर आ रहा है। स्त्री के प्रति उभर रही इसी भोग की दृष्टि से आम औरतों का ही ज्यादा शोषण हो रही है। बलात्कार की घटनाओं का शिकार प्रायः कोई कामगार औरत, या घरेलु औरत ही होती है।

“पता नहीं कहाँ की गई होगी हत्या
उसके पहले कहाँ बलात्कार
कितने होंगे भेजिए तीन से कम तो हरगित नहीं
कौन होंगे हत्यारे धन्ना सेठ, ताकतवर दरबारी
जैसे प्रश्नों का कोई अर्थ नहीं बचा था”⁶⁵

बलात्कार जैसी सामाजिक विपत्ति के प्रति और उसके शिकार के प्रति समाज का नज़रिया बदलने की ज़रूरत है। ऐसी औरतों को समाज में स्थान प्राप्त

नहीं होते। बलात्कार जैसी हादसों में फंसी लड़कियों से कवि पुनः जाग उठने और ज़िन्दगी में आगे बढ़ने के लिए आह्वान कर रहे हैं। ऐसी औरतों को हौसला देते हुए कवि कह रहे हैं-

“भूल जा ज़ोर ज़बरदस्ती की रात
अंधेरे के हमले को भूल जा बाई”⁶⁶

बलात्कृत औरत को समाज में न्याय दिलवाना वह अपने कर्तव्य समझते हैं। क्योंकि कवि को पता है औरत जात के दुख और आँसु अनगिनत हैं-

“आकाश पाताल में भी अट नहीं सकता
इतना है औरत जात का दुख
धरती का सारा पानी भी
धो नहीं सकता
इतने है आसुओं के सूखे धब्बे”⁶⁷

घरेलु औरत का संघर्ष बरसों से चल रहे हैं। औरत घर की चार दीवारों के भीतर बंधी हुए जिस संघर्ष को उम्र भर सेल रही है, उसी संघर्ष ने उससे उसका अस्तित्व छीन ले गयी हैं. घर के सभी सदस्यों से जुड़ते हुए जो अस्मिता वह कायम रखी है, वह उसके खुद का अस्तित्व नहीं है।

“एक औरत का छड
भीड में भटक रहा है
उसके हाथ अपना चेहरा ढूँढ रहे हैं
उसके पाँव
जाने कब से
सबसे
अपना पता पूछ रहे हैं।”⁶⁸

सदियों से स्त्री वर्ग अपने अस्तित्व के लिए लड़ रहे हैं। समूचे स्त्रीवादी आन्दोलन के बावजूद भी भारत के कई प्रदेशिक इलाकों में, पिछड़े वर्ग के ऐसी हज़ारों औरत हैं, जो आज भी समाज की मुख्यधारा के शामिल नहीं हैं जो शोषण के शिकार बनते हुए जी रही हैं। उन्हें ज़िन्दगी में कभी भी सुख प्राप्त नहीं होते। इससे कवि बहुत दुखी है।

“नींद में हंसने देखना उसे
मेरा एक सपना यह भी
पर वह तो
माथे की सलवरें तक
नहीं मिटा पाती सोकर भी”⁶⁹

4.8.1 पारिवारिक मूल्य क्षरण

परिवार समाज के सबसे छोटी लेकिन सबसे अहम इकाई है। भारत में पहले संयुक्त परिवार की प्रथा थी। आज के भागम-भाग की ज़िन्दगी में परिवार छोटे बनते जा रहे हैं। ढाँचे से भी और आत्मीय लगाव से भी। प्रौद्योगिक विकास-जीवन के भागदौड़, बेरोज़गारी, महंगाई की समस्या आदि तत्वों ने पारिवारिक एकता को खतम कर दिया। रिश्तों की ऊष्मलता और नयी मिट गयी और वह यान्त्रिक, औपचारिक संबन्ध बन गया। संयुक्त परिवार में जो आपसी मेल-जोल और लगाव था वह खतम हो गया। एकाकी परिवारों में अब व्यक्तिपरकता को ज़्यादा अहमियत प्राप्त होने लगी।

एकाकी परिवारों में व्यक्ति के इर्द-गिर्द व्यक्ति नहीं बेजान चीज़ें हैं जो उसके लिए परेशान हो रही है, चिंतित हो रही हैं और उसकी फिक्र कर रही हैं। बाहर जाकर घर में प्रवेश करनेवाले व्यक्ति के सामने उसके फिक्र करते सवाल करनेवाले

घड़ी, किताबें, मेज़ और कुर्सी सब वर्तमान ज़िन्दगी के खालीपन की ओर इशारा करते हैं-

“....कमरे में प्रवेश करते ही उसे
एकाएक चिन्तित और भयभीत दिखाई दी तमाम चीज़ें
उसे लगा जैसे घड़ी किताबें मेज़ कुर्सी
खटिया, बिस्तर तकिया सभी पूछ रहे-
इतनी देर पहले तो कभी नहीं की
हम समझे नहीं कुचल तो नहीं दिया
किसी ट्रक, बस, कार या स्कूटर ने
शिकार तो नहीं हुए किसी अन्धाधुन्ध
गोली दागनेवाले के
या कहीं किसी बिस्फोट में....”⁷⁰

व्यक्ति आज अपने ही घर में एकदम अकेला पड़ गया है। वर्तमान आत्मकेन्द्रित मानव की विडम्बना यह है कि उसके लिए परेशान होने के लिए सिर्फ बेजान चीज़ें ही मौजूद हैं। कोई नमी भरे आत्मीय रिश्ते का अभाव आज के व्यक्ति-जीवन को खोखला कर देता है। संयुक्त परिवार में जहाँ ऐसे सवालों से व्यक्ति के चारों ओर उपस्थित गहरे रिश्ते थे जिसे आज के आत्मकेन्द्रित मानव बोझ समझने लगे हैं।

संयुक्त-परिवार प्रणाली में बुजुर्गों की भूमिका बहुत अहम थी। वे परिवार और समाज के मार्गदर्शक होते थे। एक लम्बी ज़िन्दगी के दौरान अर्जित अनुभवज्ञान उन्हें जीता-जागता पुस्तकालय बना देते हैं। जीवन के हर उतार-चढ़ाव, कई बलिदान, सुख दुख से गुज़रते हुए जो आरामदेह घरेलु व्यवस्था को उन्होंने संजोया है, वह आगे चलके उनके लिए बेमतलब रह जाते हैं। बच्चों को उन्नती की ओर ले जानेवाले ये

पथप्रदर्शक घर में दूसरे पीढ़ी के आ जाने से हाशियाकृत हो जाते हैं। बदलती पारिवारिक अवधारणा के कारण समाज में संवेदनायें मृत हो रही हैं, संबन्धों की ऊष्म खतम हो रही हैं। इसलिए जीवन के अंतिम पक्ष की ओर जी रहे इन बुजुर्गों को वे दरकिनार करने लगे हैं। आज के भागमभाग के भ्रांतिलोक में नौकरी पेश परिवार के लिए परिवार और पारिवारिक रिश्तों को संभालने का वक्त नहीं है। बुजुर्गों में उपजे यह अन्यत्व पूरे सामाजिक ढाँचे को टिकाकर रखने में सक्षम है।

“देखो तुम्हारे दोस्त बाबू अब
 खत नहीं भेजता न आता
 अपनी औरत का गुलाम
 बूढ़े दिनों से मुँह चुराता माठुचंद....

 कहाँ गया बाबू
 खो गया मेरा बच्चा
 मशीनों के बियाबान में”⁷¹

अपने बच्चों के प्यार भरे परिचालन से वंचित होकर वृद्ध-सदनों में जीने के लिए अभिशप्त आज के बुजुर्ग पारिवारिक मूल्य हास के जीता-जागता सबूत है। देवताले जी इस सच्चाई से वाकिफ है कि यह अन्यत्व-बोध का सफर मात्र आज के बुजुर्ग पीढ़ी तक सीमित नहीं है। इसलिए वे पाठकों को या आगामी पीढ़ियों को यह आगाह करना चाहता है। आज जो बेटा अपने बाप के लिए खो गया है, वह कल अपने बच्चों के लिए खो जायेगा।

“तेरी कविता में एक दिन था, मैं माठुचन्द
 मैं खो गया था अपने बाप के लिए
 आज तेरा बाबू अपने से ही खो गया है....”⁷²

घर परस्पर स्नेह, विश्वास और आपसी लगाव संबन्ध के बलबूते पर खड़ा होता है। रिश्तों के आपसी लगाव खतम हो जाये तो घर मात्र एक मकान जाता है। खून के रिश्तों के टूटना आज आम बात बन गयी हैं। आज के आदमी सिर्फ पैसों से अपना रिश्ता जोड़ता है। वर्तमान भारत में ऐसे किस्सों का पुलिन्दा है, जैसे भाई-भाई का दुश्मन है, माँ-बाप बच्चों को पैसों के लिए भेज रहे हैं और अंधविश्वास में फंसे लोग रिश्तों पर कठोर प्रहार दे रहे हैं। भारतीय समाज के इस बदहालात के प्रति कवि चिन्ताकुल है-

“सोचता बैठा हूँ
थके हुए पत्थर की तरह
क्या हमारा समय पहुँच गया है
उस कगार तक
कि दस किलो जुआर के लिए
बाप इस तरह दाँव पर लगा दे अपनी बेटी”⁷³

अपने घर के लिए धन-संपत्ती जुटाने के वास्ते भागदौड करने के बीच वर्तमान स्वार्थी मानव के मन में अपने माँ-बाप के ख्याल कभी नहीं आते। रिश्तों में उपज रही यह शिथिलता, यान्त्रिकता और संवेदनहीनता वैयक्तिक जीवन में ही नहीं सामाजिक जीवन में भी उथल-पुथल मचायेगी। हालांकि जीवन के हर पड़ाव में, उनकी दी हुई हिदायतें काम आती रहती हैं, फिर भी उन्हीं के लिए वक्त निकालना मुश्किल ही नहीं बल्कि नुकसानदायक लगता है। क्योंकि आज के भूमंडलीय बाजारू अपसंस्कृति में हर रिश्ते नाते को मुनाफा, नागदी, लाभ घोटा आदि के तोले पर तोलने की मानसिकता प्रदान की है। फिर भी माँ-बाप के मन में ममता के बहाव वैसा ही रहता है तब भी जब उन्हें मिलने के लिए अपने बच्चे आते भी नहीं हो।

“हर आने-जाने मिलनेवालों से कई दिनों तक
 अपनी समूची कल्पना-शक्ति
 और औरतों की रोशनी पर जोर डालते
 बुदबुदाती हैं पिछली बार कब देखा था बेटे को
 और आँसुओं के अदृश्य जारों को थामे
 आकाश-तनी सीढ़ियों पर हल्के कदम
 चढती हैं उनकी दुआँ”⁷⁴

दाम्पत्य जीवन की असफलता

भारत देश के सांस्कृतिक विकास में विवाह और परिवार का महत्वपूर्ण स्थान है।

पति-पत्नी का संबन्ध एक परिवार की सुख-संपन्नता की आधार-शिला है। उनके पारस्परिक सहयोग, प्रेम, स्नेह, ममता की नींव पर परिवार की समृद्धि आधारित रहती है। वैश्वीकरण के वर्तमान दौर में पति-पत्नी के रिश्तों के घनत्व नयी मिट गया। नशा, मदिरा आदि वैवाहिक जीवन के सबसे बड़ा दुश्मन है। नशे में धुंध घर में प्रवेश करनेवाला पति का चित्रण वह आज़ाद थी सुबकने के लिए कविता में चित्रित है। कमाऊ पति के घर के प्रति जो जिम्मेदारी है नशे में काफूर हो जाते हैं।

“अब वह आज़ाद थी सुबकने के लिए
 उसके खर्राटों का निनाद
 और नींद का अंधेरा मददगार था
 और इसी आज़ाद के साथ
 वह उसके जूतों के तस्में खोलने लगी।”⁷⁵

शंकी पति औरत के जीवन को किस तरह दुरूह बनाते हैं और उससे बचने के वास्ते वह क्या-क्या करती है इसका अंकन घर में 'अकेली औरत के लिए' कविता में हुआ है। पति चाहे पालतू हो तो भी कोई फर्क नहीं पडता। लेकिन शंकी पति बहुत खतरनाक होते हैं।

“पर वह शक्की हो सकती है
इसलिए उसकी प्रतीक्षा करो
पर छज्जे पर खडे होकर नहीं
कमरे के भीतर वक्त का ठीक
हिसाब रखते हुए....

.....

बिस्तर पर अच्छी किताबें पटक दो
जिन्हें पढना कतई अवश्यक नहीं होगा
पर यह विचार पैदा करना अच्छा है
अकेले में तुम इन्हें पढती हो....”⁷⁶

4.8.2 धार्मिक मूल्य-क्षरण

भारतीय संस्कृति में धर्म शब्द की व्याख्या बड़े पैमाने पर की है। विशेष कर्तव्यों, गुणों को धारणा करने को 'धर्म' शब्द की व्याख्या के रूप में कह सकते हैं। धर्म अपने असली रूप में समाज के लिए हानिकारक नहीं है। लेकिन आज धर्म सिर्फ जाति संबन्ध बन गया है। धर्म के निहित मनुष्यत्व, परोपकार स्नेह करुणा जैसी भावनायें आज लुब्ध हो गयी है; मन्दिरों में हो रहे विशेष उत्सवों, पर्वों में प्रायः यह धन संपत्ती जुटाने की लालच दिखाई देती है।

“यहाँ अश्वमेध यज्ञ हो रहा है
पुण्य खरीदने के लिए उतावले

थोक में चढ़ा रहे हैं
 कडक नोटों की गड़्डियाँ हज़ारों की
 और दया धर्म के प्रकम्पित आलोक में
 मोक्ष यहाँ खैरात की तरह बूँट रहा है
 और अपनी-अपनी बीवियों को खींचकर लाए गए लोगों में
 हडबडी है
 उन्हें जोड़े के साथ होम-यजन करना है”⁷⁷

मोक्ष को भारतीय संस्कृति जीवन के सबसे अहम तत्व मानती है। धर्म दर्शन और आध्यात्मिकता के ज़रिए पुरुषार्थ चतुष्टय और आश्रम व्यवस्था को निर्धारित करके भारतीय संस्कृति मोक्ष प्राप्त करने के लिए मानव को तैयार करती थी। मोक्ष प्राप्ति उत्तम और श्रेष्ठ जीवन के लक्ष्य माने जाते थे। आज वह मोक्ष प्राप्ति के मार्ग चैनलों और बाज़ारों में बिक रही हैं।

“साधु सन्तों-महन्तों और सन्यासिनियों के वाणी के
 बाज़ार में बिक रहा है
 पता नहीं कहाँ का कैसा मोक्ष
 जिसके विज्ञापनों को ऊँची हवा दे रहे हैं अखबार”⁷⁸

धार्मिक मूल्यों का अपचयन देश की संस्कृति के लिए सबसे बड़ा संकट पैदा करते हैं। धार्मिक क्षेत्र इस मूल्य क्षरण का पर्दाफाश चन्द्रकान्त देवताले ने इस कविता में किया है।

संस्कृति का स्वरूप बदल रहा है। हमेशा मनुष्योन्मुख रहनेवाली भारतीय संस्कृति आज मानव-विरोधी बनती जा रही है। आज भारत की सांस्कृतिक अस्मिता में भूमंडलीय बाज़ार की उपभोगवादी संस्कृति हावि हो रही है। संस्कृति के इस

बदलते स्वरूप ने उसे अपसांस्कृतिक परिधान प्रदान की। किसी भी संस्कृति का अपसांस्कृतिक बनना सांस्कृतिक संकट भी है और स्वस्थ सामाजिक व्यवस्था के लिए चुनौती भी। क्योंकि अपसांस्कृति मूल्य-केन्द्रित नहीं बल्कि पूँजी और वर्चस्व केन्द्रित है। सांस्कृतिक संकट के खिलाफ जागरूक रहना इसलिए समय की ज़रूरत है। इस संदर्भ में साहित्यकार का प्रतिरोध सार्थक बन जाता है। क्योंकि अमानवीय व्यवस्था के प्रतिरोध में बेहतर समाज की संकल्पना निहित है। समय की मांग को पूरा करते हुए चन्द्रकान्त देवताले की कविताओं में प्रतिरोध की संस्कृति सशक्त रूप से रेखांकित हुई है।

4.9 प्रतिरोध की संस्कृति

प्रतिरोध अपने-आप में एक संस्कृति है। क्योंकि संपूर्ण सामाजिक व्यवस्था की कामियों के प्रति विरोधात्मक रुख अपनाते हुए ही उसे सुसंस्कृत और परिष्कृत किया जा सकता है। चाहे कोई भी विश्वास हो या परंपरा, जब वह इनसान को नष्ट करने लगते हैं तो उसके प्रति विद्रोह होना चाहिए। इसलिए ही सामाजिक क्षेत्र की हरेक मनुष्य-विरोधी प्रक्रियाओं का, विश्वासों का, और दर्शनों का विरोध हुआ है और वह प्रतिरोध समाज को नई दिशा दिलाने में सफल भी हुआ है। बौद्ध संस्कृति का उदय, भक्ति आन्दोलन, पाश्चात्य संस्कृति की उन्मुखता आदि ऐसे ही प्रतिरोध की कड़ियाँ हैं।

चन्द्रकान्त देवताले की कविताओं में प्रतिरोध

चन्द्रकान्त देवताले की कविताओं में प्रतिरोध के विभिन्न आयाम उपलब्ध हैं। सक्रिय क्रान्ति का, संघर्ष भरी चुप्पी का, आत्मग्लानि का और व्यंग्य भरी चेतावनी का यह प्रतिरोध, मानव-विरोधी व्यवस्था के हरेक पहलुओं के प्रति है।

वर्चस्व केन्द्रित व्यवस्था के खिलाफ, बाज़ारोन्मुख मानसिकता के खिलाफ, वर्ग-वर्ण केन्द्रित संप्रदाय के खिलाफ, मूल्यरहित जीवन के खिलाफ, विनाशकारी विकास और पारिस्थितिक शोषण के खिलाफ उनकी कविता प्रतिरोध की भाषा रचती है। इन स्थितियों के कलात्मक अंकन से पाठकों को जागरूक करना वे अपना उत्तरदायित्व समझते हैं।

अमानवीय व्यवस्था का विरोध

मानव-जीवन में इतिहास की महत्वपूर्ण भूमिका है। मानव पर सकारात्मक या नकारात्मक प्रभाव डालने के लिए इतिहास सक्षम है। लेकिन आज सत्ता या व्यवस्था अपने स्वार्थ हित की पूर्ती के लिए इतिहास को तोड़-मरोड़कर प्रस्तुत कर रही है। चन्द्रकान्त देवताले ने 'पत्थर की बेंच' के ज़रिए इसका प्रतिरोध की है।

“इस पत्थर की बेंच के लिए भी
शुरू हो सकता है किसी दिन
हत्याओं का सिलसिला
इसे उखाड़ कर ले जाया
अथवा तोड़ा भी जा सकता है
पता नहीं सबसे पहले कौन असीन हुआ होगा
इस पत्थर की बेंच पर!”⁷⁹

वर्तमान समय में बेबुनियाद और अर्थहीन मुद्दे को लेकर घटित हो रही सभी झगड़े, फसाद, दंगे आदि का ज़िक्र कवि यहाँ कर रहा है। पार्क जैसे एक सार्वजनिक जगह में, जहाँ सभी का बराबर हक है, जिससे अनेक पीढ़ियाँ की सुख-दुख, विश्राम-उत्साह की संवेदनशील स्मृतियाँ जुड़ी हुई है, ऐसी जगह से भी फायदा उठाने की सोच अपहास्य है। 'पत्थर की बेंच' से कौन-कौन लाभान्वित हुए है, यह

चिंता का विषय नहीं, बल्कि सबसे पहले किसने बनवाया, इस पर किसका अधिकार है, कौन सबसे पहले इसमें बैठा जैसी नाकुछ और नामालूम मुद्दे को लेकर हत्याओं का सिलसिला शुरू होता है।

‘पत्थर की बेंच’ यहाँ भारत के सुनहरे इतिहास का प्रतीक है। इतिहास को तोड़-मरोड़कर अपने हित में प्रस्तुत करनेवाले स्वार्थी तत्वों के खिलाफ कवि जनता को यहाँ अवबोध कराने की कोशिश में है। इतिहास की गलत प्रस्तुतीकरण लोगों में फासला बढ़ाते हैं और उन्हें गुमराह करते हैं। नतीजतन कई सांप्रदायिक दंगे, नरसंहार आदि घटित होते हैं। इतिहास की सच्चाई, उसमें निहित सहिष्णुता की भावना, मानवीय सरोकार आदि को विस्मृत करके लोगों को भडकानेवाले बर्बरात्मक घटनाओं पर ज़्यादा ज़ोर देना भारत की विलक्षण सांस्कृतिक अस्मिता के लिए हानिकारक है। इसीलिए पाठकों के लिए कवि का यह सवाल - “सबसे पहले कौन आसीन हुआ होगा इस पत्थर की बेंच पर” उनका प्रतिरोध है, और साथ ही जनता को सतर्क और सजग करने का सफल कोशिश भी है।

नव-साम्राज्यवाद का विरोध

अमरिका आज वर्चस्वशाली बन गया है। उस ने विकासशील राष्ट्रों पर कब्जा कर लिया है। उनके विकासोन्मुख सपनों की आड़ में उन पर अधिकार जमा रहे हैं। नये-नये मल्टिनेशनल कंपनियों की भरमार इसके लिए बिछा हुआ जाल है। जिसमें भारतीय युवापीढी फंसती जा रही है। मुनाफे पर केन्द्रित बाज़ारू सोच के कठपुतले बनाके उनके शोषण परोक्ष रूप से किये जा रहे हैं। सबसे ज़्यादा ‘ट्रेन्डी’ बनकर जी रही इन युवपीढियों के सोचने-समझने और करने की क्षमता और उनकी काबिलियत इन्हीं साम्राज्य शक्तियों की गिरफ्त में है। देवताले जी इसी सत्य को बखूबी पहचानते हैं। जहाँ-जहाँ भी अमरिकी प्रसिडन्ट जाते हैं, उस देश के लिए

नुक्सानदायक कोई भी फैसला ले लेते हैं। जो सिर्फ और सिर्फ अमरिका के लिए फायदेंमंद है। इससे अनजान भारत जैसे पिछडा हुआ देश इनके जाल में फंसता रहता है। भारत आये अमरीकी प्रसिडन्ट बराक ओबामा के साथ भारत के प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने आणव करार में हस्ताक्षर किया। शुरू में हस्ताक्षर करने से इनकार करनेवाले हमारे प्रधानमंत्री ने अबकी बार पूरी छूट को स्वीकार करते हुए इस करार को स्वीकारा। देवताले जैसी वर्चस्ववादियों की कुटिलता का विरोध कर रहे हैं-

“हमारी आवाज बाज़ार में नहीं बैठी
कोई खरीद नहीं सकता
हम विरोध करते है तुम्हारा
देश भर की समुद्रों जैसी भाषाओं वाली
कविताओं की काली जुबानें दिखाते हैं
और इन जुबानों में
क्षितिज तक प्रतिध्वनित होता
कठोर वक्तव्य है हमारा तुम्हारी यात्रा के खिलाफ़
जो हर लिहाज से एक खतरनाक छलावा है”⁸⁰

4.9.3 बाज़ारोन्मुख मानसिकता का विरोध

वर्तमान युग ‘ओनलैन शोपिंग’ का युग है। वहाँ सब कुछ बिकाऊ है। नये, पुराने और फैसनबिल सभी चीज़ों बस एक ‘क्लिक’ पर मिल जाते हैं। यह इस बात की सबूत है कि वर्तमान युग के आदमी कितना बाज़ारोन्मुख है। उनके जीवन में बाज़ार आज एक आम हिस्सा बन गया है। उसकी ज़िन्दगी में बाज़ार का हस्तक्षेप उन्हें मुनाफे-केन्द्रित बना दी। जीवन के सभी पहलुओं को वह इसी नज़रिये से देखता है। रिश्ते, नाते, दोस्ती, दुश्मनी सभी में यही क्रय-विक्रय की बाज़ारू नीति वे

अपनाते है। अमीर या धनिक व्यक्तियों के लिए उनकी सहायता या मदद करने का मतलब है उन्हें कर्जदार बनाना। ऐसा कर्ज जिसे वे अपने पैसे की ताकत से मिटाना चाहते हैं। लेकिन कोई संवेदनशील व्यक्ति, जिसमें इनसानियत, प्रेम, करुण, स्नेह और भाइचारा है उनकी मदद पैसे से चुका नहीं सकते हैं। इसी सच्चाई की उत्बोधन करते हुए देवताले जी अपनी कविता 'कीचड में कमल जैसा कुछ नहीं था' में कहते हैं-

“बाप बच्ची का उसे देने को हुआ
 पैसे, दस का सिक्का
 आँखें फाड देखा उसने क्षण एक
 फिर गरदन और आँखों से किया
 मना.....”⁸¹

अत्यंत गरीबी से पीडित होने के बावजूद भी उस बच्चे ने पैसे लेने से इनकार किया। उनका यह इनकार अमीर लोगों की बाज़ारू सोच के प्रति है। सब कुछ पैसे से तोलेवाले लोगों के खिलाफ वह गरीब लड़का एक प्रतिरोध खडा कर देता है। उसका इनकार ऐसे समाज के खिलाफ है जो व्यक्ति के हैसियत उसके आर्थिक पहुंच के बलबूते पर कर देते हैं।

बिकाऊ बनकर जीनेवालों की प्रतिष्ठा प्रायः ज़्यादा होती है। अर्थात् जो व्यक्ति अप्रिय सत्य को, कठोर भाषा में व्यक्त करते हैं, वे लोगों की नज़रों को चुभता है। लेकिन कोई चिकनी भाषा में असत्य को सत्य बनाके पेश कर दें तो समाज के लिए वह माननीय होगा। साहित्य-जगत में ऐसी तीखी जुबानों के लिए आजकल ओहदे प्राप्त नहीं हो रहे हैं। राजनीति के गन्दे इरादे आजकल साहित्य-जगत को भी अपने कब्जे में कर लिया है। इसलिए ही प्रायः पुरस्कारों की घोषणा के बाद कई वाद-विवाद जन्म लेते हैं। देवताले आत्मा को गिरवी रखकर जीत हासिल करने के

खिलाफ है। वे बिकाऊ बनना नहीं चाहते, वैयक्तिक जीवन में भी, साहित्यिक जीवन में भी। वे इसका इनकार करते हुए कह रहे हैं-

“मैं मर जाऊँगा पर झूठ और दीमक की कुर्सी पर
प्रतिष्ठा का यह गोरख धन्धा मुझसे नहीं होगा”⁸²

वर्तमान दुनिया की हालत बिगड गई है। आज समाज का हर क्षेत्र पैसा और ‘पवर’ के बलबूते पर चल रहा है। साहित्य और कला जो मानव मन के कोमल पक्षों को उजागर करते हैं, आज वही बाज़ारू जगत के शिकार बन रहे हैं। साहित्य जगत में उपजे इस व्यावहारिक सोच के खिलाफ कवि इस कविता में लड रहे हैं।

4.9.4 शोषण का विरोध

शक्तिशाली हमेशा ही दुर्बलों पर अपना अधिकार जमाता है। यह दुनिया की नियति है। भारत देश में यह शोषण, वर्ग-वर्ण के नाम पर शुरू हुआ। समाज में सबसे ज़्यादा दबित दो वर्ग है स्त्री और दलित। आज नारी सशक्तीकरण और दलित जागरण की वजह से स्थितियों में बदलाव तो ज़रूर आयी है। फिर भी देश के कई पिछडे हुए इलाकों में आज भी यही शोषण का सिलसिला ज़ारी है।

स्त्री का प्रतिरोध

पुरुषसत्तात्मक व्यवस्था में स्त्री स्वत्व का दमन व शोषण तो होता ही रहता है। वह स्त्री ही है जो ज़िन्दगी के हर पडाव में बलिदान देती रहती है। कभी बेटी बनकर, कभी पत्नी बनकर, कभी बहिन बनकर कभी बहु और कभी माँ बनकर। ‘घर’ की चार दीवारों में कैद रहने के लिए अभिशप्त नारी से कवि यह आह्वान करता है कि ‘चुप रहने की आग में’ अब जलने की ज़रूरत नहीं है। अब आगे बढ़ने का समय है। हर प्रकार के घरेलु शोषण से मुक्ति देने का समय है-

“आज वह बुदबुदाता है
 अटूठो हिम्मत करो
 अपने करोड़ों हाथ रख दो बिजली के तार पर
 चखकर देखो शब्द
 गुमशुदा चेहरे और नाम और उम्मीदें
 छिप कर रहती है इन्हीं में”⁸³

संघर्ष भरी चुप्पी साधते हुए औरतें पूरा जीवन बिता रही है। अब हिम्मत करके शोषण का प्रतिरोध करने के लिए त्रिभुवन के ज़रिए कवि उन्हें उकसा रहे हैं। यह कवि का प्रतिरोध है। स्त्री जाति को खुद की अस्मिता बना देने के लिए प्रेरित करते कवि उनके अन्तर की आग को यहाँ दर्शाते हैं।

वर्ग शोषण का प्रतिरोध

‘भूखण्ड तप रहा है’ नामक काव्य संग्रह के प्रमुख पात्र है त्रिभुवन। वह आम-आदमी का प्रतीक है। वर्तमान सामाजिक व्यवस्था की दुर्गति यह है कि आम-जनता को समाज के संपन्न वर्गों के शोषण का शिकार बनना पड़ता है। धोखेबाज महाजनों पूँजीवादियों और सूदखोरों के शोषण से पीड़ित त्रिभुवन क्रान्ति की राह पर उतर आता है। अपनी आगामी पीढ़ियों को ‘आग’ की भाषा सिखाना चाहते हैं। शोषण के खिलाफ विद्रोह करने के लिए तैयार खड़े त्रिभुवन युवापीढी के क्रान्तियुक्त मन का प्रतिनिधि है।

“बच्चों के बीच सिखाता है नई बारहखडी
 ‘अ’ अनार का नहीं
 देखना तक जिसे नामुमकिन
 ‘अ’ अना का है
 ‘आ’ आग का है”⁸⁴

त्रिभुवन ने अपने जैसे आम आदमियों के लिए सुन्दर भविष्य का सपना देखा था। लेकिन ज़िन्दगी के रास्ते चलते उसे पता चलता है कि सामाजिक न्याय हमेशा आम आदमियों के खिलाफ है। वह मोहभंग की स्थिति में क्रान्ति के रास्ते चुन लेता है। गरीबी और भूख से मुक्ति पाना चाहता है। इसलिए वह सभी शोषितों से कहता है कि-

“उठो और अपनी हड्डियों को बजाना शुरू कर दो
 भूखण्ड तप कर भट्टी बन रहा है
 तन कर सीधे खड़े हो जाओ
 और कहो ‘नहीं’
 बस बहुत हो चुका अब और नहीं एकदम नहीं
 इस नहीं की आंधी में उड़ने लगेंगे
 तमाम कागजों के पुलिन्दे वर्दियाँ
 सुभाषित वाक्य और कुर्सियाँ”⁸⁵

कवि यहाँ तमाम भ्रष्ट सामाजिक व्यवस्था के प्रति अपना आक्रोश व्यक्त कर रहे हैं। 1982 में लिखी गई इस लम्बी कविता भूख और गरीबी से पीड़ित मध्यवर्गीय परिवार का चित्रण है। तत्कालीन युग की आवश्यकता थी कि शोषण से दब चुकी जनता को सहारा देना। शोषण के विरुद्ध आवाज़ उठाने के लिए तैयार करना। इसीलिए कवि ने कहा कि इस दबाव के अन्धेरा चाहे जितना भी हो लेकिन हिम्मत करके आगे बढ़ने पर जीत उन्हें हासिल होगी।

“बीहड अंधेरा
 फिर भी करोड़ों अगर एक साथ देखें
 तो पत्थर तक फोड सकती हैं
 उनकी निगाहें”⁸⁶

देवताले जी त्रिभुवन के चरित्र के ज़रिए समाज में व्याप्त वर्ग-शोषण के खिलाफ अपना प्रतिरोध व्यक्त कर रहे हैं। त्रिभुवन की लड़ाई, कवि की लड़ाई है।

4.9.5 अवमूल्यन का प्रतिरोध

भारतीय संस्कृति की नींव ही मानवीय मूल्य है। व्यक्ति के सामाजिक जीवन को उदात्त बनाने में मानवीय मूल्यों का महत्वपूर्ण स्थान है। स्नेह, करुणा भाईचारा, सहानुभूति, सहिष्णुता आदि मूल्यों का क्षरण आज हो रही हैं। उनके स्थान पर स्वार्थ लोभ, ईर्ष्या, घृणा जैसे भावों ने ले लिया है। भौमंडलीकृत युग में अहंकार, और हिंसा व्यक्ति की पहचान बन गये हैं। सभी रिश्ते-नाते धनाधारित बन गये हैं। अमीर-गरीब, उच्च वर्ग-निम्न वर्ग, नेता-आम आदमी, जैसे नींव पैसा और अधिकार ही है। जीवन में इस अन्तर्विरोध से जब कभी टकराहट होती है, कविता में इसकी प्रतिक्रिया कई ढंग से शब्दबद्ध होती है। दरअसल कवि का सामाजिक सरोकार ही इसके पीछे कार्यरत है। इसलिए कभी विरोध के तेवर में और कभी विद्रोही अन्दाज़ में वे प्रतिक्रियान्वित होते हैं। 'एक नींबू के पीछे' कविता में गर्भवती गरीब और मज़दूर औरत ने जब बाई साहब के घर से नींबू उठाया तो उसे चोर कहती हुई दुत्कारा जा रहा था। तब कवि ने उनसे पूछा "कानून को हाथ में क्यों ले रहे आप।" कवि यहाँ अन्याय के विरुद्ध खड़े आम-आदमी का प्रतीक बन जाते हैं। लेकिन पैसे की ताकत के सामने उन्हें भी चुप होना पडा। उनका यह अधूरा संघर्ष कविता के ज़रिए बाहर निकल रही है।

“मुझे चीखना था और तमाशा खडा करके
सिद्ध कर देनी थी एक मेहनतकश औरत की
आकाश छूती हैसियत

और उसके सामने एक नींबू
और उस बाई साहब की बित्ता भर औकात”⁸⁷

अवमूल्यन का यह दौर आम आदमियों के लिए ज़्यादा कठिन है। जीवन के हर क्षेत्र में दिख रहे इस मूल्य क्षरण की समस्या कवि को अन्दर से रही है। इसलिए उन्होंने उन सभी अन्यायों के खिलाफ अपनी कलम उठायी।

पारिस्थितिक सजगता

विनाशकारी आविष्कारों से बिगडती पारिस्थितिक संतुलन के प्रति चन्द्रकान्त देवताले चिंतित है। महज भौतिक उन्नति पर केन्द्रित इस विकास के फलस्वरूप पर्यावरण का विस्थापन हो रहा है। इस भौतिक विस्फोट में (सारी पृथ्वी ही नहीं) पृथ्वी के सभी जीव-जन्तु, पेड़-पौधे, नदियाँ और झरने सभी आतंकित हो रहे हैं। प्रौद्योगिक विकास के बहाव में अस्तित्व विहीन प्रकृति की बदहालत को समझनेवाले चन्द्रकान्त देवताले को ऐसी पृथ्वी पर जीना और मरना गंवारा नहीं है-

“हरी पत्तियों के गुच्छे नहीं होंगे
तो मैं कैसे मरूँगा
मैं घर में पैदा हुआ
घर पेड़ का सगा था
गाँव में बड़ा हुआ
गाँव खेत-मैदान का सगा था
पर अब किस तरह रंग बदल रही है दुनिया
मैं कारखाने में फंसी आवाज़ों के बिस्तर पर
नहीं मरूँगा”⁸⁸

ऐसी प्रदूषित पृथ्वी पर मरने के लिए इनकार करनेवाला कवि पाठकों के सामने एक और सवाल भी रखते हैं। ‘तुम्हारे बच्चों के बच्चे किस तरह, रास्ता

बनायेंगे, कैसा पानी कैसी हवा।' यह सवाल प्रतिरोध की, संघर्ष की और आत्मालोचन की नई भाषा रचती है।

4.9.6 विनाशकारी विकास का विरोध

विकास का मतलब जीवन गति की उन्नति है। भारतीय संस्कृति ने हमेशा इस विकास को मन व अचरज की शुद्धता और तरक्की से जोड़ा। लेकिन महज भौतिक विकास पर केन्द्रित शहरीकरण की प्रवृत्ति ने गाँव और ग्रामीण संस्कृति के लिए चुनौती खड़ी कर दी। सरल और शुद्ध ग्रामीण जीवन, नगर बोध के आखेट में घायल हो गए है। ग्रामीणों के विश्वास, उसल, परंपरायें रीति-रिवाज़ और सभी कोमल भावनाएँ को मिट रही है। साथ-साथ जीते हुए भी अलग-अलग वर्गों में बंटे हुए जीने की उनकी नियती और शहरी कपटता के विरुद्ध चन्द्रकान्त देवताले आवाज़ उठा रहे हैं।

“मैं नहीं सिर्फ शब्द मैं उस कपट के विरुद्ध
जो टुकड़ों में बाँट रहा चेहरे
जो जुटा नहीं पाया अब तक कीचड के टापू में, साफ सुधरे घर
मैं चुप्पी की गुहा में शंख की तरह
मैं आग की तरह जमे हुए दुख की बर्फीली चट्टानों में
नागझिरी मैं एक छोटा सा भाट....”⁸⁹

इस कविता में शहरीकरण की वजह से वजूद खो बैठी एक गाँव का मर्मस्पर्शी विवरण है। शहरी कपटता ने जब सहज ग्रामीण वातावरण को यत्रसभ्यता के नमूने बना दिये तब कवि ने अपनी कविता द्वारा उसकी पुनः सृजना की है। यह अपने गाँव के प्रति उनका प्यार है और विनाशकारी विकास के प्रति उनका प्रतिरोध। इसलिए ही 'हाथों में थूकने की प्रथा' का सहारा लेते हुए कवि गाँव से पूछता है-

“गाँव तू थूक नहीं था मेरी हथेली पर”⁹⁰

ताकि गाँव को कभी भूल नहीं पाये, ज़िन्दगी भर उसकी याद बनी रहे। विकास के खुबसूरत चेहरे के पीछे छिपे मनुष्यता पर, आत्मीय रिश्तों पर हो रहे वार से कवि वाकिफ है। उनका मत है - “नागझिरी हमारा जीवन है हमारी पहचान है। विकास के नाम पर इसे हम अपनी आँखों के सामने तहस-नहस होते देखने को अभिशप्त है। आखिरकर हमारी खुशियों को, छोटे-छोटे सुखों को किस तरह यंत्रों ने लील लिया है। एक दुस्वप्न की तरह मेरे भीतर आज भी है नागझिरी।”⁹¹ कवि कभी भी विकास के खिलाफ नहीं है। परन्तु विकास के नाम पर होनेवाले सारे के सारे मनुष्यविरोधी कदमों के प्रति अपना सख्त विरोध वे प्रकट करते हैं।

भ्रष्ट राजनीति का विरोध

राजनीति राष्ट्र की प्रगति के लिए अनिवार्य है। देश का शासन यदि न्यायपूर्ण ढंग से नहीं हुई तो राजनीति में भी असमंजस पैदा हो जायेगी। स्वतंत्रता के बाद भारत का शासन की बागडोर भारतीय हाथों पर आ पहुँची। भारतीय जनता का विश्वास था कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश की हालात में बदलाव होगा। शोषण की नीति समाज हो जायेगी। लेकिन शोषण की नीति उसके बाद भी चलती रही। देवताले के शब्दों में कहें तो चाकू देशी हो गया। लेकिन वह चाकू आज भी वहाँ मौजूद है।

वर्तमान राजनीति में सत्ताधारी वर्ग अपना अधिकार बनाये रखने के लिए जनविरोधी चरित्र ग्रहण करने पर उतर आये हैं। उसके लिए वे चालाकी से भाषा का मनमाना उपयोग करके जनता को फंसाते हैं। इसीलिए कवि ने चालाक भाषा शब्द का प्रयोग करके अन्तर्विरोधों को एक-एक करके उभारने का कार्य किया है। चुनाव

के वक्त झूठे वादे करके तख्ती पर चढने के लिए उतावले रहते हैं। देवताले जी जनता को यह आह्वान दे रहे हैं कि ऐसी चालाकी के खिलाफ लडना चाहिए।

“हमें उन अफवाहों को
भाप की तरह उडाना है
जो शांती और व्यवस्था की काँख से
निकलकर
एक सुनहरी यात्रा का संसार सौंपते हुए
चालाक भाषा के भीतर
दरवाजे
खोलती है।”⁹²

राजनीति के इस गद्दी खेल में जीवन के ज़रूरी संसाधनों से वंचित गरीब और लाचार जनता ही ज़्यादा घायल हो जाती हैं। ऐसे झूठे वादों से थककर ज़िन्दगी आगे बढ़ाने के लिए वे कभी-कभी अपराधों की दुनिया में कदम रखते हैं। भूख की समस्या से उलझ रहे ऐसी जनता को राजनीतिज्ञों के साथ मिलकर मीडिया और न्याय व्यवस्था भी दोषी ठहरा देते हैं। कवि इसके प्रति अपना विद्रोह प्रकट करते हैं।

“नागरिकों! सफेदपोश डाकुओं बडे चोरों की तस्वीरों पर थूको
और बचाओ अपराधों से गरीब-मज़बूरों को
कायदे जुल्म-सज़ा के यदि नहीं बदलते
तो तुम बदलो आदत अपनी
सोचो इस विषय पर सचमुच यह विषय कठिन नहीं है”⁹³

राजनीति के क्षेत्र में भ्रष्ट शासकों को मीडिया द्वारा मशहूर बनाके पेश किया जा रहा है। बडे-बडे चोरों, सफेदपोश डाकुओं को ओहदे, सम्मान और अधिकार सब प्राप्त है। यह कानून छोटे-छोटे चोरों को कडी सज़ायें देते हैं। इस

विसंगति की ओर इशारा करते हुए कवि अपना आक्रोश व्यक्त कर रहा है कि यदि जुल्म की यह कानून नहीं बदले तो अपनी आदत बदलनी होगी। मसलन ऐसी वर्चस्व केन्द्रित व्यवस्था की अमानवीय हरकतों को बर्दाश्त करने की ज़रूरत नहीं बल्कि उनके खिलाफ आवाज़ उठानी चाहिए। कवि का यह प्रतिरोध वर्चस्व केन्द्रित उस सामाजिक व्यवस्था के प्रति भी है जो हमेशा पैसे के साथ खड़ी रहती है। राजनीति के इस भदे नाटक से तंग होकर कवि अपना विरोध यूँ प्रकट करते हैं-

“कब तक देखते रहोगे करोड़ों लोगों
इस भदे नाटक को
इसका परदा अपने आप गिरनेवाला नहीं
साथियों
मंच सहित उखाड़कर फेंकना होगा
इस तामझाम कम्पनी को”⁹⁴

जनता के हर एक सवाल का ऐसा जवाब अधिकारियों से मिलता है जो महज एक प्रहसन मात्र है। जवाब देनेवालों की पता है। हर हालत में मुकम्मल-मुहर साबित होगा उनका जवाब। ‘क्योंकि उनके जवाब के पीछे/ताकत है हाथों की जो ज़्यादाह है गिनती में/पूछनेवाले हाथों से...।’ ऐसी राजनीतिक व्यवस्था में जनता की असहाय स्थिति और भी जटिल हो जाती है। इसीलिए कवि उनके प्रति विद्रोहात्मक रुख अपनाते हुए पूरी व्यवस्था को बदलने का आह्वान देते हैं। उनका प्रतिरोध यहाँ सक्रिय क्रान्ती की मांग करता है।

निष्कर्ष

भारतीय संस्कृति में निहित गत्यात्मकता ने उन्हें देश-विदेश के विभिन्न संस्कृतियों से, ज्ञान-विज्ञान के भण्डारों से परिचित कराया। भारतीय सांस्कृतिक

मूल्यों का जब पाश्चात्य सांस्कृतिक मूल्यों से संपर्क हुआ तब हमारी सांस्कृतिक अस्मिता में वैरुध्य उपजने लगा। यही वैरुध्य सांस्कृतिक गतिशीलता को केवल एकतरफा बना दी। क्योंकि भारतीयों युवापीढियों के आधुनिक मनोभाव से, भारतीय सांस्कृतिक मूल्य कदम मिलाकर चल नहीं सके। भौतिक प्रधान पाश्चात्य संस्कृति उन्हें आधुनिक लगने लगे। और भारत को भी विकास के नई-नई सम्भावनायें प्राप्त होने लगी। परिवर्तन की यह चुनौती भारतीय सांस्कृतिक अस्मिता को धीरे-धीरे खतम कर रही है। नतीजतन आज भारत की आत्मीयवादी संस्कृति, उपभोगी बाज़ारू और यान्त्रिक संस्कृति बन गई।

उपभोगवादी संस्कृति सभी चीज़ों को उपभोगी नज़रिये से देखती है। सिर्फ बेजान चीज़ों को ही नहीं बल्कि चेतनायुक्त मानव को भी उपभोग की चीज़ बना डालने की प्रवृत्ति इसमें निहित है। यह ज़्यादा खतरनाक है। व्यक्ति का मूल्यांकन ही उपभोग पर केन्द्रित हो तो रिश्ते, नाते संबन्ध मिट जायेंगे और मानवीय चेतना भी ध्वस्त हो जायेंगे।

बाज़ारू और मीडिया संस्कृति के घुसपैठ से मानव भावनाहीन और चेतनाहीन बन गये हैं। मुनाफे पर केन्द्रित नज़रिये के शिकार बने मानव भारतीय संस्कृति के सामने एक बड़ी चुनौती है। मूल्यहीनता मानव की पहचान बन रही है। मानव से जुड़े सभी क्षेत्रों में यानी राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, कानूनी सभी क्षेत्रों में यही मूल्यहीनता के विभिन्न चेहरा झलकती रहती है। महज धन सपल आयता करना आज मानव के सबसे अहम लक्ष्य बन गये हैं। उसके लिए प्रयत्नरत मानव के सभी क्रिया-कलापों में भ्रष्टाचारी, धोखा फरेब आदि ने स्थान प्राप्त कर लिये। दूसरों के शोषण करना उनकी आदत बन रही है। इस तरह मानव जीवन का सामाजिक परिप्रेक्ष्य अपसांस्कृतिक बन रही है।

भारत की सांस्कृतिक अस्मिता पारस्परिक, नैतिक मूल्यों और श्रेष्ठ जीवन मूल्यों पर केन्द्रित था। वह मूल्य जिसमें मानवीयता को सबसे ज़्यादा अहमियत प्राप्त था, आज क्षरित और ध्वस्त हो रही है। आज की सांस्कृतिक अस्मिता अवमूल्यन पर केन्द्रित है। इस बदलती सांस्कृतिक अस्मिता का सामाजिक परिप्रेक्ष्य को पहचानकर चन्द्रकान्त देवताले अपनी कविताओं के ज़रिए इनका प्रतिरोध की है।

युग-संकट के खड़ी में प्रतिरोध समय की ज़रूरत बन जाती है। स्वस्थ सामाजिक व्यवस्था के लिए खतरा पैदा करनेवाली हरेक पहलुओं के प्रति उनका प्रतिरोध मुखर है। व्यवस्था के अमानवीयता की शिकार होनेवाले आम जनता के साथ देते हुए कवि उस व्यवस्था को उखाड़कर फेंकने के लिए पाठकों की उक्साते हैं। यह उनके विद्यात्मक स्वभाव के नमूना है। राजनीति के क्षेत्र में सामाजिक क्षेत्र में निहित सभी प्रकार के मूल्य क्षरण संवेदनशून्यता, और अन्याय के खिलाफ उन्होंने अपना विरोध प्रकट की है। साम्राज्य शक्तियों के जाल में फंसकर दिगभ्रमित हो रही युवा पीढ़ी, और प्रदूषित राष्ट्रीय वातावरण को पहचानकर कवि (साम्राज्य शक्तियों) उसका पर्दाफाश कविता में की है। प्रदूषित हो रही पर्यावरण और बिगड रही पारिस्थितिक संतुलन के पीछे कार्यरत स्वार्थी मानव के हरेक कार्यकलापों के खिलाफ भी उन्होंने अपनी लेखनी चलायी है।

प्रतिरोध की मिट्टी में खड़ी उनकी कवितायें कभी सक्रिय कान्ती का रूप ले लेती हैं; कभी निराशा की गहराई में गुम हो जाता है। फिर भी एक आशावादी दृष्टिकोण के साथ वे पुनः जागृत हो उठते हैं और अपना सामाजिक सरोकार बखूबी निभाते हैं।

संदर्भ

1. ए. अरविन्दाक्षन - समकालीन हिन्दी कविता - पृ. 16
2. चन्द्रकान्त देवताले - हमें ही, पत्थर फेंक रहा हूँ - पृ. 139
3. वीरेन्द्र मोहन - इतिहास और संस्कृति - पृ. 21
4. - गुटरग्रास को पत्र-पत्थर की बैंच - पृ. 92
5. शंभूनाथ - संस्कृति की उत्तरकथा - पृ. 158
6. चन्द्रकान्त देवताले - घबराया डरा-सा आदमी-उजाड में संग्रहालय - पृ. 41
7. शंभूनाथ - संस्कृति की उत्तरकथा - पृ. 163
8. चन्द्रकान्त देवताले - घबराया डरा सा आदमी-उजाड में संग्रहालय - पृ. 43
9. चन्द्रकान्त देवताले - दो लड़कियों के पिता होने से - लकडबघा हंस रहा है - पृ. 61
10. चन्द्रकान्त देवताले - बाई दरद ले उजाड में संग्रहालय - पृ. 84
11. चन्द्रकान्त देवताले - पुल बनेगा तो - उजाड में संग्रहालय - पृ. 39
12. चन्द्रकान्त देवताले - हत्यारा यहाँ पर हत्यारा नहीं, पत्थर की बैंच - पृ. 86
13. चन्द्रकान्त देवताले - पेड, लकडबघा हंस रही है - पृ. 75
14. चन्द्रकान्त देवताले - सिंगापुर जैसा बनाने को बेताव - पत्थर फेंक रहा हूँ - पृ. 28
15. चन्द्रकान्त देवताले - करिश्मे भी दिखा सकते हैं अब किताबे उजाड में संग्रहालय - पृ. 65
16. चन्द्रकान्त देवताले - कवियों की छुट्टी - उजाड में संग्रहालय - पृ. 29
17. चन्द्रकान्त देवताले - लेब्रेडोर - पत्थर की बैंच - पृ. 105
18. चन्द्रकान्त देवताले - सिर्फ पहली पंक्ति - पत्थर फेंक रहा हूँ - पृ. 97
19. चन्द्रकान्त देवताले - सबसे ज़रूरी काम - आग हर चीज़ में बतायी गयी थी - पृ. 85
20. वही - पृ. 84
21. चन्द्रकान्त देवताले - कीचड में कमल जैसा कुछ नहीं था - पृ. 83

22. चन्द्रकान्त देवताले - मैं आपके काम का आदमी नहीं - उजाड में संग्रहालय - पृ. 103
23. चन्द्रकान्त देवताले - आपकी तरह बोलने के लिए - पत्थर फेंक रहा हूँ - पृ. 95
24. डॉ. संजय रणखांबे - समकालीन हिन्दी साहित्य विविध विमर्श - पृ. 66
25. चन्द्रकान्त देवताले - पुस्तक मेले में - पत्थर फेंक रहा हूँ - पृ. 100
26. चन्द्रकान्त देवताले - पवित्र स्नान के दिन धर्मनिष्ठपरण उजाड में संग्रहालय - पृ. 47
27. चन्द्रकान्त देवताले - इस चमकदार जनतन्त्र में सिर्फ जनता ही का नमोनिशान नहीं - पत्थर फेंक रहा हूँ - पृ. 162
28. वही - पृ. 164
29. चन्द्रकान्त देवताले - यह विषय कठिन नहीं है - आग हर चीज़ में बताई गयी थी - पृ. 80
30. चन्द्रकान्त देवताले - यहाँ अश्वमेध यज्ञ हो रहा है - उजाड में संग्रहालय - पृ. 188
31. चन्द्रकान्त देवताले - सिर्फ तारीखें नहीं बदला करती समय उजाड में संग्रहालय - पृ. 11
32. चन्द्रकान्त देवताले - पन्द्रह अगस्त - उजाड में संग्रहालय - पृ. 20
33. चन्द्रकान्त देवताले - चूर-चूर बिखर रहा माँ का कलेजा - पत्थर फेंक रहा हूँ - पृ. 75
34. चन्द्रकान्त देवताले - बताया गया है - उजाड में संग्रहालय - पृ. 36
35. चन्द्रकान्त देवताले - हिंसक समय में - पत्थर की बेंच - पृ. 60
36. चन्द्रकान्त देवताले - श्याम को सडक पर एक बच्चा - लकडबग्घा हंस रहा है - पृ. 36-37
37. चन्द्रकान्त देवताले - एक नींबू के पीछे - पत्थर फेंक रहा हूँ - पृ. 80
38. चन्द्रकान्त देवताले - एक गंजा आदमी सिर पर कंधा रखे सोया है - उजाड में संग्रहालय - पृ. 45

39. चन्द्रकान्त देवताले - ट्रक में बकरों की लदान - आग हर चीज में बतायी गयी थी - पृ. 70-71
40. वही - पृ. 71
41. चन्द्रकान्त देवताले - हमसे भी तो कुछ सीखना चाहिए मनुष्यों को - उजाड में संग्रहालय - पृ. 49
42. चन्द्रकान्त देवताले - सहानुभूति जतानेवाले - पत्थर की बेंच - पृ. 57
43. चन्द्रकान्त देवताले - मुंठभेड इक्की आदमी से
44. चन्द्रकान्त देवताले - फक्त एक है जो चीज़ों को थामे खडा है - उजाड में संग्रहालय - पृ. 14
45. चन्द्रकान्त देवताले - यह विषय कठिन नहीं है - आग हर चीज़ में बतायी गयी थी - पृ. 80
46. चन्द्रकान्त देवताले - किसने काला कोटे तय किया होगा - आग हर चीज़ में बतायी गयी थी - पृ. 75-76
47. चन्द्रकान्त देवताले - सांप सीढी का खेल - भूखण्ड तप रहा है - पृ. 27-27
48. चन्द्रकान्त देवताले - इस तरह मुक्दमे चले - पत्थर फेंक रहा हूँ - पृ. 143
49. चन्द्रकान्त देवताले - एक नींबू के पीछे - पत्थर फेंकरहा हूँ - पृ. 81
50. डॉ. बी.एफ. शेख - समकालीन हिन्दी कविता और कवि - पृ. 37
51. चन्द्रकान्त देवताले - दुर्लभ मौका आपने गँवा दिया - पत्थर फेंक रहा हूँ - पृ. 146
52. चन्द्रकान्त देवताले - चीते को जकाम होने से - लकडबगघा हंस रहा है - पृ. 43
53. चन्द्रकान्त देवताले - वो पाँचों और हम सब - रोशनी के मैदान की तरफ - पृ. 43
54. वही - पृ. 42-43
55. चन्द्रकान्त देवताले - दीवारों पर खून से - पृ. 39
56. चन्द्रकान्त देवताले - सबसे ज़रूरी काम - आग हर चीज़ में बतायी गयी थी - पृ. 87
57. चन्द्रकान्त देवताले - युवा विधायक - आग हर चीज़ में बतायी गयी थी - पृ. 53

58. चन्द्रकान्त देवताले - चखकर देखो शब्द - भूखण्ड तप रहा है - पृ. 34
59. चन्द्रकान्त देवताले - खुद भरोसा दम तोड़ रहा - पत्थर फेंक रहा हूँ - पृ. 117
60. चन्द्रकान्त देवताले - हमारे समय का समाधि-वाक्य, उजाड़ में संग्रहालय - पृ. 17
61. चन्द्रकान्त देवताले - अपने लोग किस तरह मारते हैं - पत्थर की बैंच - पृ. 54
62. चन्द्रकान्त देवताले - यह जेल की कोठरी नहीं है - उजाड़ में संग्रहालय - पृ. 140
63. चन्द्रकान्त देवताले - यह जेल की कोठरी नहीं है - उजाड़ में संग्रहालय - पृ. 140
64. चन्द्रकान्त देवताले - देवी - वध - उजाड़ में संग्रहालय - पृ. 81
65. चन्द्रकान्त देवताले - इस मामले में भी राही बताया गया - उजाड़ में संग्रहालय - पृ. 82
66. चन्द्रकान्त देवताले - बाई दरद ले - उजाड़ में संग्रहालय - पृ. 84
67. वही - पृ. 85
68. चन्द्रकान्त देवताले - औरत - लकडबग्घा हंस रहा है - पृ. 9
69. चन्द्रकान्त देवताले - मेरा एक रचना यह भी - लकडबग्घा हंस रहा है.... पृ. 37
70. चन्द्रकान्त देवताले - एक दिन परेशान से गई कमरे की चीज़ें - झनी पत्थर रोशनी - पृ. 37
71. बच्चा खो जाने के बाद - लकडबग्घा हंस रहा है - पृ. 46
72. चन्द्रकान्त देवताले - हम चुपचाप खडे थे - लकडबग्घा हंस रहा है - पृ. 27
73. चन्द्रकान्त देवताले - तुम मरे हुए बाप था कोई और - पत्थर फेंक रहा हूँ - पृ. 71
74. चन्द्रकान्त देवताले - यदि हम याद कर सकते कोख में बीता जीवन - पत्थर फेंक रहा हूँ - पृ. 68-69
75. चन्द्रकान्त देवताले - वह आज़ाद थी सुबकने के लिए - पत्थर की बैंच - पृ. 33
76. चन्द्रकान्त देवताले - घर में अकेली औरत के लिए - उसके सपने - पृ. 43
77. चन्द्रकान्त देवताले - यहाँ अश्वमेध यज्ञ रहा है - उजाड़ में संग्रहालय - पृ. 50
78. चन्द्रकान्त देवताले - हमसे भी तो कुछ सीखना चाहिए मनुष्यों को उजाड़ में संग्रहालय - पृ. 80
79. चन्द्रकान्त देवताले - पत्थर की बैंच, पत्थर की बैंच - पृ. 98

80. चन्द्रकान्त देवताले - बुद्ध के देश में बुश - पत्थर फेंक रहा हूँ - पृ. 152
81. चन्द्रकान्त देवताले - कीचड में कमल जैसा कुछ नहीं था - लकडबग्घा हंस रहा है - पृ. 82-83
82. चन्द्रकान्त देवताले - आपकी तरह बोलने के लिए - पत्थर फेंक रहा हूँ - पृ. 96
83. चन्द्रकान्त देवताले - चखकर देखो शब्द - भूखण्ड तप रहा है - पृ. 41
84. चन्द्रकान्त देवताले - मई की विशाल छती पर अग्निवृक्ष उडते हैं - पृ. 84
85. वही - पृ. 86
86. वही - पृ. 82
87. चन्द्रकान्त देवताले - एक नींबू के पीछे - पत्थर फेंक रहा हूँ - पृ. 82
88. चन्द्रकान्त देवताले - कैसा पानी कैसी हवा, आग हर चीज़ में बतायी गयी थी - पृ. 15
89. चन्द्रकान्त देवताले - नागझिरी - पत्थर की बैंच - पृ. 76
90. चन्द्रकान्त देवताले - गाँव तू थूक नहीं सकता था मेरी हथेली पर - पृ. 81
91. वही
92. चन्द्रकान्त देवताले - खिलाफत के विरुद्ध - दीवारों पर खून से - पृ. 17
93. चन्द्रकान्त देवताले - यह विषय कठिन नहीं है - आग हर चीज़ में बतायी गयी थी - पृ. 80
94. चन्द्रकान्त देवताले - सवाल - जवाब - आग हर चीज़ में बतायी गयी थी - पृ. 119

